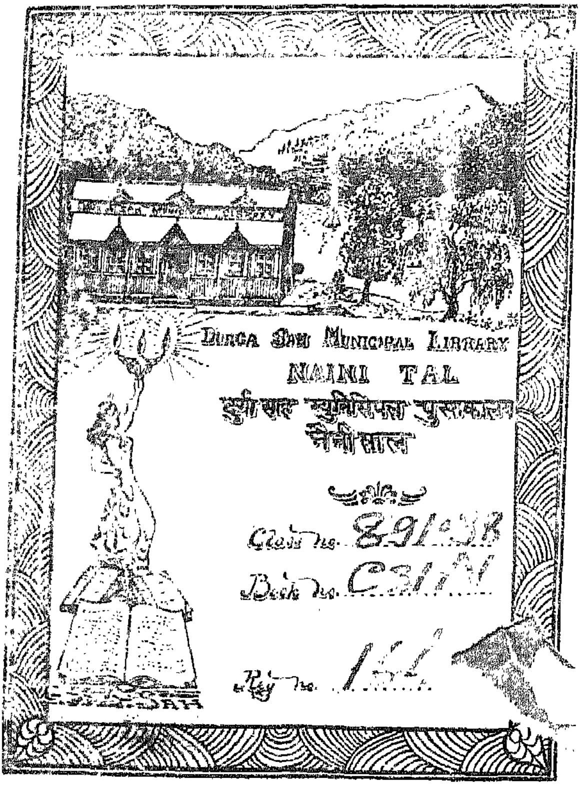
Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891.3B
Book No. C31N
Reg No. 151

नवाब ननकू

आचार्य श्री चतुरसेन शास्त्री

की

कहानियों का संग्रह

सम्पूर्णाधिकार लेखक के आधीन

ज्ञान धाम, देहली शाहदरा

[illegible]] [मूल्य साढ़े तीन रुपये

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal,
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No, (विभाग) 891.38
Book No, (पुस्तक) C31N
Received On. Aug. 1948

विषय सूची

कहानी		पृष्ठ
१ नवाब ननकू	...	१–२२
२ सुखदान	...	२३–४५
३ नहीं	...	४६–५८
४ दियासलाई का बक्स	...	५८–६५
५ मास्टर साहेब	...	६६–६६
६ टार्च लाइट	...	६६–१०७
७ वन्समोर	...	१०८–११६
८ सोया हुआ शहर	...	११७–१३७
९ जैन्टिलमैन	...	१३८–१७०
१० वारन्ट	...	१७१–१८०
११ क्राँतिकारिणी	...	१८१–१६३
१२ खुनी	...	१६४–१६६
१३ मुखबिर	...	२००–२३२
१४ लहू-पुरुष	...	२३३–२४४

'ज्ञानधाम दिल्ली शाहदरा' : नव संसार प्रेस,
के लिये 'धारा पब्लिकेशन : किनारी बाजार, देहली
दिल्ली द्वारा प्रकाशित द्वारा मुद्रित

नवाब ननकू

सर्दी के दिन और सनीचर की रात, कल इतवार। न दफ्तर जाने की फिक्र, न किसी काम की चिंता। बस बेफिक्री से खाना खाकर जो रज़ाई में घुसे तो अम्बरी तमाखू का कश खींचते-खींचते ही अस्तग़राक़फील हो गये।

मगर उस मीठी नींद में शुरू ही में विघ्न पड़ गया। नीचे कोई कर्कश स्वर में चिल्ला रहा था—बाबू साहब, अजी बाबू साहब। उस वक्त आराम में यों खलल पड़ने से तबियत झल्ला उठी। क्या मजे की झपकी आई थी। मैंने उठ कर खिड़की से सिर निकालकर कहा—कौन है भई इस वक्त?

"अजी हम हैं, नवाब साहब, ग़ज़ब करते हैं आप भाई साहब, अभी लम्हा भर हुआ है सूरज छिपे और आपके लिये आधी रात हो गई, चीखते २ गला फट गया। मुहल्ला भर सिर पर उठा डाला।"

बड़ा गुस्सा आया उस नवाब के बच्चे पर, जी में आया कच्चा ही चबा जाऊं। मगर जब्त करके कहा—कहिये नवाब साहब, इस वक्त कैसे?

"अजी दर्वाज़ा तो खोलिये, या गली में खड़े ही खड़े राग अलापूं।"

मन ही मन दाव पेंच खाता नीचे उतरा और कुण्डी खोली। नवाब साहब चुपचाप पीछे २ जीना चढ़कर ऊपर आये। आते ही मसनद पर बेतकल्लुफी से उठंग गये। कहने लगे खुदा की

मार इस सर्दी पर। हड्डियाँ तक ठंडी पड़ गईं। मगर उस्ताद खूब मजे में आप मीठी नींद ले रहे थे।

मैंने कहा आपके मारे कोई सोने पाये तब तो, कहिये इस वक्त कैसे तकलीफ की?

नवाब साहब ने बेतकल्लुफी से हँस कर कहा—यों ही, बहुत दिन से भाभी साहिबा के हाथ का पान नहीं खाया था, सोचा-पान भी खा आऊं और सलाम भी करता आऊं।

गुस्सा तो इतना आ रहा था कि मदूँद को धकेल दूँ नीचे। मगर मैंने गुस्सा पीकर कहा—पूरे नामाकूल हो तुम। कल इतवार था। कल यह सलाम की रस्म पूरी नहीं कर सकते थे: जो इस वक्त मेरे आराम में खलल डाला।

नवाब साहब खिलखिला कर हँस पड़े। जेब से सिगरेट का बक्स और दियासलाई निकाल कर एक होठों में दबाई, दूसरी मेरी ओर बढ़ाते हुये कहा—खर, सिगरेट तो पिओ और गुस्सा थूक दो। हां, चालीस रुपये मेरे हवाले करो और इसे रखो संभाल कर।

उन्होंने बगल से एक पोटली निकाल कर मेरे आगे सरका दी।

मैंने कहा—यह क्या बला है, और इस वक्त रुपयों के बिना कौन क़यामत बर्पा हो रही थी।

नवाब साहेब को भी गुस्सा आ गया। कहने लगे-क़यामत नहीं बर्पा हो रही थी तो मैं यों ही भख मारने आया हूँ इस वक्त? हजरत, यह मेरी भी पीनक का वक्त था।

"मगर इस वक्त रुपये तुम क्या करोगे?"

"फेंक दूंगा सड़क पर, तुम से मतलब ?"

"रुपये नहीं हैं ?"

"रुपये न होने की खूब कही, बुलाऊं भाभी को ?"

'भाभी तुम्हारी क्या तोप से उड़ा देंगी, बुलाओ चाहे जिसको, रुपये नहीं हैं।"

"समझ गया, बेहयाई पर कमर कसे हुये हो। लाओ चुपके से रुपये दे दो। अभी मुझे सदर तक दौड़ना होगा।"

"सदर तक क्यों ?"

"एक बोतल ह्विस्की और गजक लेने और क्यों ?"

"अच्छा, तो हजरत को शराब के लिये रुपये चाहिये।"

"जी हाँ, शराब के लिये, और कबाब के लिये भी, निकालो जल्दी से।"

"कह तो दिया रुपये नहीं हैं ?"

"तुमने तो कह दिया मगर हमने तो सुना ही नहीं।"

"नहीं सुना तो जहन्नुम में जाओ।

"कहीं भी हम जायें तुम्हारी बला से, लाओ तुम रुपये दो।"

"रुपये नहीं दूंगा, अब तुम चलते हो यहां से नवाब।"

"चे खुश। रुपये तो मैं खड़े-खड़े अभी लूंगा तुमसे।"

"क्या तुम्हारा कर्ज चाहिये मुझ पर ?"

"कर्ज ही तो मांगता हूँ।"

"मैं कर्ज नहीं देता।"

"देखता हूँ कैसे नहीं दोगे, बुलालो भाभी को भी अपनी हिमायत पर। नवाब ने गुस्से से आस्तीन चढ़ानी शुरू की।"

मुझे बुरी तरह हँसी आ गई। कहा—[illegible]

करने पर आमादा हो ?

"मारपीट ! तुम मारपीट की कहते हो, मैं तुम्हें गोली न मार दू तो नवाब ननकू नहीं।"

मैंने हंस कर कहा—गोली मार दोगे तो फिर रुपया कहाँ से वसूल करोगे नवाब साहेब ?

"बस, इसी बात को सोच कर तो तरह दे जाता हूं। निकालो रुपये ?"

"लेकिन नवाब, तुम तो कभी नहीं पीते थे, आज यह क्या बात है ?"

"तो क्या मैं अपने लिये मांगता हूँ। मैंने कभी पी है ?"

"फिर किसके लिये ?"

"राजा साहब के लिये ?"

"अच्छा—यह बात है, अब समझा। कोई नई चिड़िया आई है क्या ?"

"राजेश्वरी आई है बनारस से।"

"तो तुम क्यों उस शराबी के लिये झख मारते फिरते हो ?"

"तब कौन झख मारे, तुम चाहते हो राजा साहब खुद तुम्हारे दर्वाजे पर आकर चालीस-चालीस रुपल्ली के लिये जलील होते फिरें।"

"वे कुछ भी करें, तुम्हें क्या, जो जैसा करेगा भोगेगा। जिसने लाखों की जमीन-जायदाद, जर-जवाहवात, सब शराब और रंडी-भड़ुओं में फूंक दी, तुम उससे क्यों इतनी हमदर्दी करते हो ?"

"क्या मैं हमदर्दी करता हूं।"

"तब ?"

"मैं मुहब्बत करता हूँ उनसे भाई, उनकी इज्जत करता हूं।"

"किस लिये ? आखिर सुनूं तो।"

"किस लिये ? सुनो, पहिले तो वे मेरे बड़े भाई, दूसरे ऐसे दाता, ऐसे प्रेमी, ऐसे बात के धनी, ऐसे दिल वाले कि दुनिया में चिराग लेकर ढूंढो तो मिल नहीं सकते।"

"शराबी और रंडीबाज भी क्यों नहीं कहते ?"

"वह तुम कहो, वे शराब पीते हैं और रण्डियों से आशनाई करते हैं—इसमें किसी का क्या लेते हैं। उन्होंने अपनी लाखों की जायदाद उन्हें दे दी जिन्हें उन्होंने प्यार किया। आज उनका हाथ खाली है, मगर दिल बादशाह है। वे जीते जी बादशाह रहेंगे। मैं उन्हें पसन्द करता हूं, प्यार करताहूं, इज्जत करता हूँ। मैं नहीं बर्दाश्त कर सकता कि वे दुनिया के आगे हाथ फैलावें।"

"और तुम उनके लिये भीख मांगते फिरते हो।"

"किससे मैंने भीख मांगी है, कहो तो", नवाब ने तैश में आकर कहा।

"यह अभी तुम चालीस रुपये मांग रहे हो ?"

"और यह क्या है ?"

नवाब ने सामने की पोटली की ओर इशारा किया। उसे तो मैं भूल ही गया था। मैंने देखा वह एक जरी के काम का कीमती लँहगा है।

नवाब ने कहा—

"बेचना चाहूँ तो खड़े-खड़े दो सौ में बेच दूं। तुम से तो

मैं चालीस ही मांग रहा हूँ।"

"लँहगा क्या राजा साहब ने दिया है ?"

"वे क्यों देने लगे ? अम्मी जान का है, राजेश्वरी आज आई थी। मुझे बुला कर राजा साहब ने कहा—नवाब,हाथ में इस वक्त कुछ नहीं है, राजेश्वरी के लिये कुछ खाने पीने का बन्दोबस्त कर दो। आँखें उनकी शर्म से झुकी थीं और लाचारी से भीग रही थीं। बस इतनी ही तो बात है।"

"अच्छा और तुम चुपके से घर आये, यह लँहगा उठाया और यहां आ धमके।"

"जी हां और तुम्हारी नींद हराम करदी ! बहुत हुआ अब, बस अब लाओ रुपये दो।"

मैंने चुपके से दस-दस के ४ नोट नवाब के हाथ पर रख दिये। मेरी आँखों मे आँसू आ गये और मैंने वह लँहगा उसी तरह लपेट कर नवाब की ओर बढ़ाते हुये कहा—इसे लेते जाओ।

नवाब ने आपे से बाहर होकर चारों नोट फेंक दिये। लाल होकर कहा—"अच्छा तो हजरत मुझे भीख देने की जुर्रत करते हैं।"

"नहीं भाई, ऐसा क्यों सोचते हो, मगर यह लँहगा मैं नहीं रख सकता।"

"तो तुम्हारे रुपये भी नवाब नहीं ले सकता, आज राजा कामेश्वर प्रसाद सिंह खाली हाथ हैं, और नवाब ननकू अपनी अम्मी जान का लहँगा गिरवी रखने पर लाचार हैं मगर आप यह मत भूलिए कि वे दोनों सलीमपुर के राजा महाराज

नन्दन सिंह के नुतफ़े से पैदा हुए हैं जो तीन बार सोने से तुले थे, और जिन्होंने ग्यारह हाथी ब्राह्मणों को दान दिये थे। जिनकी दी हुई जागीरों को सैकड़ों शरीफ़ज़ादों की खास औलाद आज भोग रही है। इलाके भर में उनके पेशाब से चिराग़ जलते थे।" मैंने खड़े होकर खुशामद करते हुए कहा—वह सब ठीक हैं नवाब साहब, मगर ये रुपये तुम मेरी तरफ़ से राजा साहब को नज़र करना।

"हरगिज नहीं, राजा साहब कभी किसी की नजर क़बूल नहीं करते। तुम यह लहंगा गिरों रख कर चालीस रुपये देते हो वो दो।"

लाचार मैंने हामी भर ली। मैंने लहंगे को उसी तरह लपेट कर रख लिया और नवाब रुपये जेब में रख कर उठ खड़े हुए।

मैंने कहा—यह क्या नवाब, भाभी का पान बिना खाये और बिना सलाम किये चले जाओगे।

"हरगिज नहीं" नवाब ने बैठते हुए कहा,—"बुलाओ तो उन्हें।"

मैंने पत्नी को नीचे से बुलाया। वे बच्चों को दूध पिलाने और सुलाने की खटपट में लगी थीं। नवाब को एक लफँगा आदमी समझती थीं। मेरे पास उसका आना-जाना और चाहे जब रुपये पैसे ले जाने को वे हमेशा नापसन्द करती थीं। उन्हों ने आकर कहा—इस वक्त मेरी तलबी क्यों हुई है?"

"यह इन नवाब साहब से पूछो?"

"यही कहें?"

"पान खिलाइये तो कहूं ?"

"कहो, पान भी मिल जायगा।"

"बात की सनद नहीं; आपके से दो बीड़ा बढ़िया पान ले आइये।"

पत्नी चली गई। और एक तश्तरी में कई बीड़े पान लेकर लौटीं। उनमें से दो बीड़े उठाकर नवाब ने हाथ में लिए, अदब से मेरी पत्नी के सामने खड़े हुए और जमीन तक झुक कर कहा—सलाम बड़ी भाभी, आपका यह गुलाम नवाब ननकू आपको सलाम करता है और आपकी दुआ की इस्तजा रखता है।

पत्नी मुस्कराई। उन्हों ने कुछ झेंपते हुए कहा—कभी बच्चों को भी नहीं भेजते हो नवाब साहब, एक बार भेजा।

"जो हुक्म बड़ी भाभी, सलाम।"

नवाब साहब ने और एक सलाम झुकाई और चले गये।

मेरी नींद बहुत रात तक गायब रही। मैं अन्दाजा न लगा सका कि यह व्यक्ति संसार के सब मनुष्यों से कितना ऊंचा है।

(२)

कमरे में एक ओर अँगीठी जल रही थी। राजा साहब पलग पर लेटे थे और एक खिदमतगार धीरे-धीरे उनके पांव सहला रहा था। राजेश्वरी नीचे फर्श पर बैठी छालियाँ काट रही थी। चाँदी का पानदान सामने खुला रक्खा था। राजा साहब गंगा जमुनी काम की गुड़गुड़ी पर अम्बरी तम्बाकू पी रहे थे और धीरे-धीरे राजेश्वरी से बातें करते जाते थे।

राजेश्वरी की उम्र चालीस को पार कर चुकी थी। बदन उसका कुछ भारी हो चला था और माथे पर की लटों में चांदी

की चमक अपनी बहार दिखा रही थी। फिर भी उसकी पानी-दार आँखें और मृदु मुस्कान में अभी भी मोह का नशा भरा था।

राजेश्वरी ने कहा—सरकार ने यों नजरें फेर लीं, मुद्दत हुई एक पैग़ाम तक न भेजा, सुनती रहती थी, हुजूर के दुश्मनों की तबियत ख़राब रहती है। आखिर जी न माना बेहया बन कर चली आई।

"मुझे निहाल कर दिया तुमने इस वक्त आकर राजेश्वरी, दिल बाग़-बाग़ हो गया। क्या कहूं, बहुत याद करता हूं तुम्हें—मगर—"

"हुजूर की नजरे इनायत पर मैंने हमेशा फ़ख्र किया है। और मरते दम तक करूंगी।"

"तुम जिओ राजेश्वरी, ईश्वर तुम्हें खुश रखे। यह मूज़ी बीमारी—क्या कहूं, अब तो हिलने-डोलने से भी लाचार हो गया हूं। पर यह सब उस भगवान की दया है। फिर मुझे अपनी लाचारी का क्या ग़म है जब तुम दुनिया की तमाम खुशी लेकर यहाँ आ जाती हो।"

राजेश्वरी ने चार बीड़ा पान बनाकर राजा साहब को अदब से पेश किये। राजा साहब ने मुस्करा कर पान लेकर मुँह में रखे।

ख़िदमतगार ने आकर अर्ज की, "हुजूर, कुंवर साहब सलाम के लिये हाजिर हुए हैं।"

"आयें वे," राजा साहब ने धीरे से कहा।

कुंवर साहब ने झुक कर राजा साहब को सलाम किया

और पैताने की ओर अदब से खड़े हो गये।

राजा साहब ने कहा—चाची को सलाम नहीं किया बेटे।

कुंवर साहब ने आगे बढ़कर राजेश्वरी को सलाम किया, और दो क़दम पीछे हट गये।

राजेश्वरी खड़ी हुई। आगे बढ़कर कुँवर साहब के पास पहुंची, उनके मुंह पर प्यार से हाथ फेरा, और दो अशर्फ़ियां निकाल कर उनकी मुट्ठी में जबरन थमा दी।

कुंवर साहब ने पिता की ओर देखा।

राजा साहब ने कहा—लेलो, और चाची को फिर मुकर्रर सलाम करो।

कुंवर साहब ने फिर झुक कर सलाम किया। राजेश्वरी ने दोनों हाथ उठा कर आशीर्वाद दिया। राजा साहब ने इशारा किया और कुँवर साहब चले गये।

एक ठण्डी साँस खींच कर राजा साहब ने कहा—इस निकम्मे बाप ने अपने बेटे के लिये कुछ नहीं छोड़ा राजेश्वरी, मगर तसल्ली यही है कि जहीन है पेट भर लेगा।

"हुजूर ऐसा क्यों फ़र्माते हैं, इन मुबारक हाथों से भीख पाकर लोगों ने रियासतें खड़ी कर लीं हैं। दुनिया में दिल ही तो एक चीज़ है हुजूर, भगवान् भी यह सब देखता है। वह उस आदमी की औलाद पर बरकत देगा, जिसने अपनी ज़िन्दगी में सब को दिया ही है। "लिया किसी से भी कुछ नहीं।"

राजा साहब ने हाथ बढ़ा कर राजेश्वरी का हाथ पकड़ लिया। बहुत देर तक कमरे में सन्नाटा रहा। दो पुराने किन्तु पानीदार दिल मन ही मन एक दूसरे को यत्न से संचित स्नेह से

अभिषिक्त करते रहे।

आख़िर में राजा साहब ने एक ठण्डी सांस भरी और गुड़गुड़ी में एक कश लगाया।

नवाब ननकू हांपते हुए आ बरामद हुए। उनकी नाक पर की ऐनक नाक की नोक पर खिसक आई थी। आते ही उन्होंने ख़िदमतगार को एक डाँट दी--अरे कम्बख़्त, बदनसीब-अंगीठी में और कोयले क्यों नहीं डाले, वह बुझ रही है। नवाब साहब जब तक हुक्म न दें ये नवाब के बच्चे कोई काम नहीं करेंगे। राजा साहब को दौरा हो गया तो याद रख कच्चा चबा जाऊंगा। उठ, जल्दी कोयले डाल।

ख़िदमतगार चुपके से उठ गया। नवाब ने ही-ही हंसते हुए कहा—देखा राजेश्वरी भाभी, ये ख़िदमतगार साले नवाब ननकू के आगे बन्दर की तरह नाचते हैं। मगर मुंह पर कहता हूँ—बिगाड़ दिया है राजा साहब ने, नौकरों को बहुत मुंह लगाना भी तो अच्छा नहीं।

"लेकिन नवाब, उन ग़रीबों को छः-छः महीने तनख्वाह नहीं मिलती है, बेचारे मुहब्बत के मारे पड़े हैं।"

"तो इससे क्या ? उनके बाप दादों ने इतना खाया है कि सात पीढ़ी के लिये काफ़ी है।"

"मगर उन्हों ने ख़िदमत भी तो की है ?"

"तो रियासतें भी तो पाई हैं।"

"अच्छा देखूं तो, राजेश्वरी के लिये क्या २ चीज़ लाए हो।"

"देखिए, और दाद दीजिए नवाब की।"

नवाब ने बोतल बग़ल से निकाली। और भी बहुत सा

सामान।

"अरे, यह इतनी खटपट किस लिये की नवाब साहब।" राजेश्वरी ने कहा।

जी. जैसे आप चिऊंटी के बराबर तो खाती ही हैं ? फिर आईं कितने दिन बाद हैं राजेश्वरी भाभी। जानते हैं राजा साहब कितना याद करते हैं। जब राजेश्वरी जबान पर चढ़ती हैं आंखें गीली हो जाती हैं। अम्मी जान कहती थीं बड़े महाराज का भी यही हाल था, जरा सी बात पर दिल भारी कर लेते थे।"

"वे देवता थे नवाब साहब।"

"और ये ?"

"ये, इन्हें पहिचाना किसने है अभी।"

"दुनिया ऐसों को कभी न पहचान पायेगी।"

खिदमतगार अँगीठी टच करके रख गया। नवाब साहब ने खुश होकर कहा—यह बात है रामधन, मगर देखो, मैंने तुम्हें एक गाली दी है—और यह दो रुपये इनाम देता हूं।

नवाब ने दो रुपये निकाल कर रामधन की ओर बढ़ा दिये।

रामधन ने नवाब के पैर छूकर कहा—हुजूर, आपकी गालियां खाकर ही तो जी रहा हूं। रुपया पैसा सरकार का दिया बहुत है।

"मगर यह भी तो लो, महरिया को एक बढ़िया सी चुनरी ला देना।"

"वह उस दिन हवेली गई थी सरकार, तो बेगम साहिबा ने जाने क्या क्या लाद दिया था, गट्ठर भर लाई थी।" नवाब ने तैश में आकर कहा—अबे रुपये लेता है या मंतिख छांटता

है क्या लगाऊँ धौल ?" रामधन ने रुपये लेकर उन्हें और राजा साहब को सलाम किया।

राजा साहेब ने हँसकर कहा—देखा राजेश्वरी, नवाब का इनाम देने का तरीका।

नवाब खिलखिलाकर हँस पड़े। उन्होंने कहा—झपाके से तश्तरियां ला, गिलास ला, पैग ला। जल्दी कर।

क्षण भर ही में सब सरंजाम जुट गया। राजा साहेब तकिये के सहारे उठंग गये। शराब का दौर शुरू हुआ। नवाब ने गिलास में सोडा और शराब भर कर कहा—राजेश्वरी, राजा साहब की तन्दुरुस्ती और बरकत के लिये। तीनों ने हँसती हुई आंखें मिलाईं। और शराब की चुस्कियां लेने लगे।

राजेश्वरी ने कहा—इस मर्तबा में बहुत दौड़ धूप की नवाब साहब।

"मान गईं न आप नवाब को, लीजिए इसी बात पर दूसरा पैग।"

"नहीं नवाब, मैं तो कभी पीती ही नहीं। बहुत मुद्दत हुई। जब से महाराज की तबियत नासाज़ रहने लगी; आज मुद्दत बाद मुँह से लगा रही हूं।"

"तो पूरी कसर निकालिये राजेश्वरी भाभी, नवाब को इस ठण्डी रात में उस साले ठेकेदार से बहुत मगज़पच्ची करनी पड़ी। साला वही रद्दी माल पटील रहा था, मैंने कहा—वह बोतल निकाल जो उस दिन हमारे, सरकार की खिदमत में गई थी। और ये कबाब, सच कहता हूं राजेश्वरी भाभी, कस्बे में दूसरा नहीं बना सकता।"

"वाकई बहुत अच्छे बने हैं, मगर आप तो खाते ही नहीं। नवाब साहब।"

"वाह, खिलाने में जो मजा है वह खाने में कहां? देखा था अम्मी के, यही एक शौक उन्हें मरते दम तक रहा—एक से एक बढ़ कर चीजें बनाना और खिलाना।"

"मुझे याद है नवाब, मैं तब बहुत बच्ची थी, आपा के साथ आती थी, छोड़ती ही न थी—खींच ले जाती थीं। कितना खिलाती थीं क्या कहूं।"

"मगर अब अम्मी तो हैं नहीं, नवाब उनका नालायक लड़का है उसने विरासत में अम्मी की वह आदत पाई है। लीजिये यह पैग तो पीना होगा।"

"मगर उधर तो देखो नवाब, महाराज ने सिर्फ ओठों से छूकर गिलास रख दिया है, पी कहां?"

"क्या कहूँ, राजेश्वरी, तकलीफ़ देती है, पी नहीं सकता। डाक्टरों ने भी मना कर दिया है। मगर तुम पिओ राजेश्वरी, आज मैं बहुत खुश हूँ। लाओ नवाब, राजेश्वरी को एक पैग मैं भर कर दूं।"

"और हुजूर एक नवाब को भी।":

"अरे, यह कब से? तुम तो कभी पीते नहीं थे।"

"आज ही से, अभी- अभी एक पैग पिया है मैंने।"

राजा साहब ने दो पैग भर कर तैयार किये। गिलास में भर कर कहा= लो राजेश्वरी, और तुम भी नवाब।

"वाह हुजूर यों नहीं, जरा सा जूठा कर दीजिए कि यह जाम पाक तबर्रुक हो जाय।" नवाब ने कहा

"राजा साहब हंस दिये, उन्होंने हाथ पकड़ कर नवाब को खींच कर छाती से लगा लिया। फिर आंखों में आंसू भर कर कहा—ननकू, मेरे प्यारे भाई, हमारी माँ दो थीं। मगर वालिद एक थे। फिर भी तुम मेरे सगे भाई हो। ऐसे, जैसा दूसरा मिलना मुश्किल है। और ननकू, मैं सिर्फ तुम्हारे प्यार की बदौलत ही जी रहा हूँ। उन्होंने प्याला ओठों से छुआ कर नवाब को दिया और नवाब गटागट पी गये। उनकी आंखों में आंसू और होठों में हंसी बिखर रही थी।

नवाब ने कहा—"राजेश्वरी भाभी, बहुत दिन से सूने-सूने दिन आ रहे थे। आज तो कुछ जच जाय।"

"मगर नवाब, गले में अब सुर तो रहे ही नहीं।"

"बेसुरा ही सही।"

महाराज ने हंस कर कहा—"राजेश्वरी, आज नवाब को बहुत मेहनत करनी पड़ी है, उसकी बात रख लो।"

"जो हुक्म, मगर मेरी एक अर्ज़ है।"

"कहो।"

"नवाब साहेब को जो तबरुक बख्शा गया है वही लौंडी को भी इनायत हो?"

"ओह, अच्छा ठहरो, सब्र करो।"

नवाब ने इशारा किया, रामधन तबला, हारमोनियम ले आया।

हारमोनियम नवाब खींच बैठे और रामधन ने चारों ओर तकिये लगा कर राजा साहेब को आराम से बैठा कर तबले उनकी गोद में रजाई में लपेट कर रख दिये। अम्बरी तमाखू

की एक नई चिलम चढ़ा दी। तबले पर एक हल्की चोट देते हुए राजा साहब ने कहा—"राजेश्वरी, अभी उंगलियों पर लकुए का असर नहीं है, काम दे रही हैं।"

राजेश्वरी ने चुपचाप आंखों में प्यार भर कर राजा साहब पर उंडेल दिया और अलाप लिया। हारमोनियम पर नवाब की अभ्यस्त उंगलियां नाचने लगीं और तबले पर मृदु मन्द ताल नृत्य करने लगी।

राजेश्वरी की प्रौढ स्वर-लहरी ने वातावरण में एक प्यास उत्पन्न कर दी। यह वैसी न थी, जैसी वासना और यौवन की आंधी के झोंकों में मिली रहती है। यहां तीन प्रेमी-विश्वस्त, पुराने और ऊंचे हृदय, अपने भौतिक आनन्द की चरम अनुभूति ले रहे थे। वे लोग आप ही अपनी कला पर मुग्ध थे, आप ही अपनी तारीफ़ कर रहे थे, आप ही अपने में पूर्ण थे।

(३)

"तो हुज़ूर, अब कब?"

"जब मर्ज़ी हो राजेश्वरी।"

"तबीयत होती है कि कुछ दिन क़दमों में रहूँ।"

"मैं भी चाहता तो हूं राजेश्वरी, पर तुम्हारी तकलीफ़ का खयाल करके चुप रह जाता हूँ। देखती हो, मकान कितना गन्दा है, सिर्फ़ दो ही खिदमतगार हैं इन्हें भी महीनों तनखाह नहीं मिलती। पर पड़े हुए हैं, तुम इन तकलीफ़ों की आदी नहीं हो।"

"मगर हुज़ूर, क्या मैं उन खिदमतगारों से भी गई बीती हूँ।

"नहीं, नहीं राजेश्वरी, मैं तुम्हें जानता हूं।"

"मगर हुजूर अपने को नहीं जानते, मेरी यह कोठी, जायदाद, नौकर-चाकर सब किसकी बदौलत हैं, हुजूर ने जो पान खा कर थूक दिया उसी की बदौलत। अब हुजूर ग़रीब हो गये तो पुराने ख़ादिम क्या बेगाने हो जांयगे?"

राजेश्वरी की आँखें भर आईं। कुछ ठहर कर उसने कहा—शर्म के मारे मैं ख़िदमतगारों को नहीं लाई, और इस टूटहे इक्के पर आई हूँ। मैं कैसे बर्दाश्त कर सकती थी कि मालिक जब इस हालत में हों तो उनकी बांदियां ठाठ दिखाएं।

"नहीं, नहीं राजेश्वरी, यह बात नहीं। पर मैं अपनी आंखों से तुम्हें तकलीफ पाते देख नहीं सकता। कभी देखा ही नहीं।"

"इसी से हुजूर, मुझे अभी जबर्दस्ती भेज रहे हैं, मेरी नहीं सुनते।"

"इसी से राजेश्वरी।"

"और इस लौंडी का कभी कोई तोहफ़ा भी नहीं कबूल करते? उस बार जब ज़नाना महल नीलाम हो रहा था, मैंने कितनी आरज़ू की थी कि मुझे रुपया चुकता कर लेने दीजिये। पुरखों की यादगार है, सब रियासत गई। मगर रहने का महल आप मेरे आँसुओं से भी तो नहीं पसीजे हुजूर, आप बड़े बेदर्द हैं।"

राजेश्वरी फूट कर रो पड़ी और राजा साहब के सीने पर गिर गई। राजा साहब उसके सिर पर हाथ फेरते रहे। फिर कहा—तुम भी बच्ची हो गई हो राजेश्वरी, अब भला उतना

बड़ा महल में क्या करता। अकेला पंछी। फिर उसमें अब खुल गया जनाना अस्पताल, कितने लोगों का भला होता है। बोर्ड ने खामखाह मेरा नाम अस्पताल के साथ जोड़ दिया है।"

"जी हां, खामखाह ही, वह लाखों की स्टेट जो कौड़ियों में दे दी। और अब हुजूर इस किराये के मकान में बहुत खुश हैं।"

"बहुत खुश, राजेश्वरी, बहुत खुश। न ऊधो का लेन न माधो का देन। लेकिन बहुत देर हो रही है, राजेश्वरी, गाड़ी पकड़नी है, स्टेशन काफ़ी दूर है, और रास्ता बड़ा खराब है। तुम्हारा इक्का आ गया?"

"धक्के दीजिए आप मुझे, बुढ़िया जो हो गई हूं, अब आप यही तो करेंगे?"

राजा साहब असंयत होकर पलंग से आधे उठ गये। राजेश्वरी को खींच कर छाती से लगा लिया। फिर प्यार से उसके गंगाजमुनी बालों की लटों को उंगलियों में लपेटते हुए कहा—बुड्ढा बुढ़िया कौन होता है राजेश्वरी, मेरी आंखों में तुम वही, नए केले के पत्ते के से रूप वाली, अछूते यौवन और अपार प्यार वाली, मेरे दिल और दिमाग की तरावट राजेश्वरी हो। तुम या मैं भले ही बूढ़े हो जांय। लेकिन इन आंखों में झांक कर जिसने तुम्हें देखा है वह बूढ़ा नहीं, और तुम्हारे भीतर बैठ कर जो एक २ मोती तुम्हारी आंखों में सजाता जा रहा है, वह भी बूढ़ा नहीं।

राजेश्वरी धीरे से राजा साहब के मुँह के बिल्कुल पास फर्श पर बैठ गई। रामधन अम्बरी तमाखू चढ़ा कर गुड़गुड़ी रख गया। राजा साहब चुपचाप तमाखू पीने लगे। तमाखू की खुशबू

ने कमरे को मस्त कर दिया।

राजेश्वरी ने कहा—"हुजूर वादा-फरामोश हो।"

राजा साहब ने भौंहें सकोड़ कर राजेश्वरी की ओर देखकर कहा—'वादा' ?"

"जी"

क्या ?

"तबर्रुक"

'ओह, भूली नहीं राजेश्वरी।'

"भूलने की एक ही कही, कल से आस लगाए हूँ। नवाब के सामने फिर नहीं कहा।"

राजा साहब कुछ देर चुपचाप गुड़गुड़ी पीते रहे। फिर कहा—"जरा और पास आओ तो राजेश्वरी।"

राजेश्वरी बिल्कुल राजा साहब के मुंह के पास खिसक गई।

राजा साहब ने गुड़गुड़ी की सोने की मूनाल उसके होठों में लगा कर कहा—एक कश खींचो तो राजेश्वरी।

"लेकिन, लेकिन हुजूर—

"ऐन खुशी होगी, खींचो एक कश।"

राजा साहेब की आंखों में प्यार का सारा ही रस उमड़ आया। राजेश्वरी ने आनन्द विभोर होकर गुड़गुड़ी से कश खींचा।

"खुश हुई अब राजेश्वरी।"

"ओह हुजूर, कहीं खुशी से मेरी छाती न फट जाय। हुजूर ने गुड़गुड़ी खास इनायत करके मेरी सात पीढ़ियों को तार दिया।"

राजासाहब ने खिदमतगार से कहा—रामधन, चिलम ठण्डी करदे और गुड़गुड़ी उस अखबार में लपेट कर इक्के में रख आ।"

राजेश्वरी का मुंह सूख गया। उसने कहा—"यह आप क्या कर रहे हैं।"

"मेरा दिल बाग बाग है, तुम दुलखो मत।"

"मगर हुजूर"

"मैं हुक्म देता हूँ—मत बोलो।"

राजेश्वरी का सर नीचे को झुक गया। उसने खड़ी होकर झुक कर राजा साहब को सलाम किया और रोती हुई चली गई। राजा साहब चित अपने पलंग पर पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल निर्वाक पड़े रहे।

(४)

"यह क्या तमाशा है, रामधन, महाराज मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू पी रहे हैं। गुड़गुड़ी खास क्या हुई?" नवाब ने कमरे में आते ही हैरान होकर पूछा। रामधन चुपचाप खड़ा रहा। उसे बाहर जाने का इशारा करते हुए राजा साहब ने मुस्कराकर कहा—यहां आओ नवाब मैं बताता हूँ।"

नवाव ननकू एक दम पलंग के पास जा खड़े हुए राजा साह ने हंसकर कहा—बैठो।

"मगर मैं पूछता हूँ गुड़गुड़ी खास क्या हुई?"

"बैठो तो कहूँ।"

नवाव ने बैठकर कहा—कहिये।

राजा साहव ने रजाई से हाथ बाहर निकाल कर नवाब का हाथ पकड़ लिया। कहा—नाराज न हो नवाब राजेश्वरी को दे दी।

"क्या उसने माँगी थी ?"

'नहीं, मगर उसे खाली हाथ कैसे जाने देता। तुम देखते ही हो, खानदान की यही एक चीज मेरे पास बची थी।"

नवाब कुछ देर होंठ चबाते रहे, फिर बोले—मगर आप मिट्टी की गुड़गुड़ी में तमाखू नहीं पी पायेंगे। मैं गुड़गुड़ी लाता हूँ।

"कहाँ से ?"

"घर से।"

"कहाँ पाई।"

"अम्मी जान की है, बड़े महाराज ने बख्श दी थी। मेरे पास यह अब तक पाक धरोहर थी। अब आज काम आएगी।"

राजा साहब ने कहा—बड़े महाराज ने जो चीज बख्श दी वह मैं वापस कैसे ले सकता हूँ।

"तो अब हुजूर नवाब को जीने न देंगे।"

राजा साहब हंस दिये। मीठे स्वर से बोले—खैर, इस अम्र पर पीछे गौर कर लिया जायगा। पर मिट्टी की गुड़गुड़ी में तम्बाकू बहुत मीठा लगता है नवाब, हाँ, यह कहो– रात सामान कैसे जुटाया था। मैं जानता हूँ तुम्हारे पास छदाम न था।

"जुट गया यों ही। नवाब हूं, कोई अदना आदमी नहीं।"

"मगर सच-सच कहो।"

"झूठ से फ़ायदा। चालीस रुपये बाबू साहब से लिए थे।"

"बड़ी तकलीफ दी उन्हें। अब यह रुपये दिये कैसे जांय ?"

"जल्दी नहीं है सरकार, रहन पर लाया हूँ यों ही नहीं

जब हाथ खुला होगा दे देंगे।"

"रहन क्या रखा ?"

"एक अदद था।"

"क्या अदद, बताओ।"

"आप तो धाँधली करते हैं, आपको मतलब ?"

"तुम्हें मेरी क़सम नवाब।"

"ओफ़"

"कहो, कहो।"

"अम्मी का लहँगा था।"

राजा साहब निश्चल पड़ गये। उनकी आँखों की दोनों कोर से आंसू बह रहे थे और उनका कांपता हुआ हाथ नवाब के दोनों हाथों में था।

सुख दान

शादी होने के तीन-चार दिन बाद जब सब फालतू मेहमान विदा हो गये, और घर में नवागत बधू, एक नौकर और दूर के रिश्ते की एक विधवा बहिन रह गई, तो बहिन ने जोड़-तोड़ लगा कर सुहागरात की जो व्यवस्था सम्भव थी, वह कर डाली।

उस व्यवस्था की सूचना जब संकेत से विद्यानाथ को मिली, तो बड़ी देर तक वह चुपचाप नीची गरदन किये अपनी बैठक में बैठे रहे। कई बार नौकर ने उठ कर सो जाने को कहा। एक बार फिर बहिन ने भी आकर कहा, पर विद्यानाथ न उठे, न कुछ कह ही सके, चुपचाप नीचा सिर किये बैठे रहे। कुछ देर चुपचाप खड़ी रह कर बहिन चली गई। उसके बहुत देर बाद जब उन्होंने ने फिर नौकर को अपनी ओर आते देखा, तो वह एकाएक उठ कर अपने चिर-परिचित शयनागार में चले गये।

शयनागार सजाया गया है, यह कहा जा सकता था। शैया पर स्वच्छ, सफेद चादर और उस पर नया तकिया, तकिये पर ताज़े बेला के फूलों की दो मालायें, सिरहाने धूप बत्ती से उड़ता हुआ धूमिल धूम्र, और खिड़कियों पर नये परदे, टेबिल पर जलपान का थोड़ा सामान, और सब के ऊपर कमरे के बीचो-बीच एक अच्छी आराम कुरसी पर बैठी हुई सुषमा, जो महीन पाड़ की एक उज्ज्वल साड़ी पहने कोई पत्रिका उद्विग्न

चित्त से पढ़ रही थी ! विद्यानाथ चुपचाप सुषमा के सामने जा खड़े हुये। हज़ारों बार देखी हुई सुषमा को इस बार वह सम्पूर्ण शक्ति लगा कर भी आँख उठा कर देखने में समर्थ नहीं हो सके। सुषमा ने पत्रिका से आँख उठा कर देखा, और मृदु हास के साथ कहा—"वहां खड़े क्यों रह गए आप ? यहाँ आइए ! दो घण्टे से मैं आपके इन्तज़ार में बैठी हूं। आज-कल क्या आप बहुत देर में सोते हैं ? पहिले तो आप जल्दी ही सो जाया करते थे। मैं—"

सहसा सुषमा रुक गयी। उसने देखा, विद्यानाथ की आंखों से झर-झर आँसू गिर रहे थे और उनकी पलकें नीचे झुकी हुई हैं। वह आँखें उठा कर उसकी ओर देख नहीं सकते थे। सुषमा ने कुर्सी से उठ कर उनका हाथ पकड़ कर कहा—"बैठिये न यहां ! अब आपको क्या दुःख है, और मैं उसमें आपका कहाँ तक हाथ बंटा सकती हूँ, मुझसे कहिये तो !...आप तो बोलते ही नहीं। क्या..."

सुषमा फिर रुक गयी। उसने देखा, उनकी आँखों से अश्रु-धारा ज्यों की त्यों बह रही है ! मन के प्रबल उद्वेग को रोकने में वह असमर्थ हैं। उनका सम्पूर्ण शरीर बेंत की तरह कांप रहा है। सुषमा ने भयभीत होकर कहा—"आपको हुआ क्या है ? क्या किसी को बुलाऊं ?" और वह उठ कर बाहर जाने लगी।

पर विद्यानाथ ने उसका हाथ पकड़ कर खींच लिया, जाने नहीं दिया। अपनी सम्पूर्ण शक्ति खर्च करके उन्होंने कहा—"बैठ जाओ, सुषमा ! मै अभी ठीक हो जाऊंगा !"

सुषमा ने उन्हें धीरे से पलंग पर बैठा दिया, और आप

उनके पास खड़ी रही। उसका हाथ विद्यानाथ के हाथ में था। उन्होंने बिलकुल टूटी-फूटी वाणी में कहा—"तुम भी यहीं बैठ जाओ, सुषमा !"

सुषमा चुपचाप उनके पास पलंग पर बैठ गई।

उसने विद्यानाथ के हाथ को दूसरे हाथ से छू कर कहा—"आप लेट जाइये! आपकी तबीयत ठीक नहीं है। बदन बर्फ-सा ठण्डा हो रहा है, और आप काँप भी रहे हैं! क्यों न डाक्टर को बुलवा लिया जाय ?"

'नहीं, नहीं ! तुम्हीं काफ़ी हो सुषमा! मैं अभी ठीक हो जाऊंगा !"

सुषमा ने फिर और कुछ न कहा। हाथ का सहारा दे कर विद्यानाथ को पलंग पर लिटा दिया। कुछ देर विद्यानाथ पलंग पर चुपचाप पड़े रहे। फिर उन्होंने भर्राए गले से कहा—"यह सब क्या हो गया, सुषमा ? कैसे हो गया ?"

सुषमा हँस पड़ी। उसने स्निग्ध, कोमल स्वर में कहा—"जो कुछ आप ने चाहा और किया, वही तो हुआ !"

"सच ? इसे भाग्य की अमिट रेखा और विधाता का अटल विधान नहीं कहना चाहिए ?"

"आप क्या भाग्य और विधाता को अब मानने लगे ? मुझे तो आप ही ने सिखाया था कि भाग्य और विधाता, यह सब दुर्बल मानव मस्तिष्क की कल्पना है।"

विद्यानाथ थोड़े लज्जित हुए। उन्होंने धीमे स्वर में कहा—"तुम जो कहती हो, यदि वही सही है, और मेरा चाहा और मेरा ही किया हुआ, तो समझो यह अनहोनी हो गई !"

"इसमें आश्चर्य क्या है ? आपकी शक्ति अपरिसीम है, और आपका प्रभाव असाधारण है। आपका विरोध करने की क्षमता किस में है ?"

"फिर भी, सुषमा, इस काम में मेरा सम्पूर्ण साहस और पौरुष खर्च हो गया। अब तुम अपना साहस और शक्ति मुझे दो, तो शायद मैं कुछ प्रतिकार..."

"मैं आपकी पत्नी हूँ, और अपना सर्वस्व आप पर न्यौछावर करने आपके पास आई हूँ। फिर आप प्रतिकार किस बात का किया चाहते हैं ?"

विद्यानाथ ने कराह कर कहा—"सुषमा, मेरे ऊपर दया करो! मुझे नग्न न करो! मैंने तुम्हारे साथ अन्याय तो किया ही है!"

"तो क्या हुआ ? सामर्थ्यवान् पुरुष अनिवार्य होने पर न्याय भी करते हैं, अन्याय भी करते हैं! परिताप और पश्चात्ताप उन्हें शोभा नहीं देते, क्योंकि वे जो कुछ भला-बुरा करते हैं, खूब अच्छी तरह सोच-विचार कर और करणीय समझ कर ही करते हैं!"

"तो, सुषमा, तुम मेरे ही शस्त्र से मुझे घायल करोगी ? मेरे ही तर्क का मुझी पर वार करोगी ?"

"और तर्क आयेगा कहां से ? आपने जो कुछ सिखाया है, वही तो मेरी तमाम जमा-पूंजी है!"

विद्यानाथ थोड़ी देर चुप-चाप पड़े रहे। सुषमा का हाथ अब भी उनके हाथ में था। उन्होंने फिर कहा—"तुमने मेरे लिये बड़ा त्याग किया, सुषमा!"

"यही बात सब लोग कहते हैं। पर आप भी कहेंगे, इसकी आशा मुझे नहीं थी।"

"क्यों? क्या यह सत्य नहीं है?"

"नहीं!"

"कैसे?"

"मैंने क्या आगे बढ़ कर अपने मन से अपने को आपके समर्पण किया है? क्या मैंने स्वेच्छा से, प्रसन्नता-पूर्वक आप से ब्याह किया है?"

"परन्तु तुमने विरोध भी तो नहीं किया!"

"विरोध नहीं किया?"

"कहां? हर बार, जब-जब बाबूजी ने ब्याह का प्रस्ताव किया, मैं ने यही कहा, 'सुषमा से पूछ लीजिए!' और हर बार उन्होंने कहा, 'वह राजी है। अपने इस सौभाग्य को वह अस्वीकार नहीं कर सकती।"

सुषमा ने बंकिम कटाक्ष करके वही धवल हास्य बखेरा। उस हास्य का करुण और द्रवित भाव देख विद्यानाथ क्षोभ और लाज से अधीर हो उठे। उनके मुंह से बात नहीं निकली। सुषमा का हाथ उनके हाथ से छूट गया। सुषमा ने फिर उसे स्नेह से पकड़ लिया और तनिक और उनके पास खिसक कर कहा—बाबूजी की बुद्धि का नाप-तोल मैं जानती हूं। उन्होंने जब-जब विवाह के सम्बन्ध में मेरी राय पूछी, मैंने एक मौन हास्य में उत्तर दिया। उसका अर्थ उन्होंने जो भी समझा हो।"

"पर सुषमा, तुम्हें खुल्लमखुल्ला 'न' कहना चाहिये था।"

"किस लिये? बाबूजी का अपमान करने के लिये? उनका

दिल तोड़ने के लिये ? ऐसा मैं नहीं कर सकती थी। आपने मुझे ऐसी शिक्षा नहीं दी थी। यदि मैं मुंह खोल कर 'न' कहती, तो आपकी शिक्षा को लजाती।"

"तो तुम्हें मुझ से कहना था।"

"आप से ?" सुषमा इस बार बच्चों की तरह खिलखिला कर हंस पड़ी। उसने वैसी ही स्निग्ध, कोमल वाणी में कहा—"आप तो मेरे मन की राई-रत्ती सब-कुछ जानते हैं, उसी भांति जैसे मैं आपके मन की। आप मेरी 'न' जानते थे, फिर भी 'हां' की प्रतीक्षा में थे। मैं आपकी प्रतीक्षा को जानती थी! फिर 'न' कैसे कहती ?"

"लेकिन..."

"अच्छा, तो आप इनकार करते हैं ? अब मेरे साथ भी शतरंज की चाल..."

"नहीं-नहीं, सुषमा, शतरंज की चाल नहीं! जब तुम मेरे भीतर-बाहर की सब बात जानती हो, तो मुझे कहना ही क्या है! मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने अपना स्वार्थसाधन ही किया और तुम्हारे अधिकार पर आघात भी किया। कहो इसका प्रतिकार क्या होगा ?"

"इस पर विचार करने को सम्पूर्ण जीवन पड़ा है! इसके लिये जल्दी क्या है ?"

विद्यानाथ उदास और शिथिल हो गये। और सुषमा का मुंह बादलों से घिरे हुये सांध्य आकाश के समान गम्भीर हो गया।

बहुत देर बाद विद्यानाथ ने कहा—'सुषमा, हम लोग कैसे

मिल कर एक हो सकते हैं ?"

सुषमा हँसी। उसने कहा—"उस वेद-मन्त्र की व्याख्या के अनुसार, जो विवाह के समय पण्डित जी ने की थी—जैसे दो बर्तनों का जल एक में मिल कर एक हो जाता है, उसी भांति !"

"सुषमा, हँसी मत करो ! मेरे दुःख को देखो !"

"देख रही हूँ ! पर हम एक तो हैं ही। आज से नहीं, तभी से, जब मैं इतनी-सी थी ! मेरी सारी जमापूंजी तो आप ही की है। आपने मुझे अक्षराभ्यास कराया, और कालेज की डिग्री दिलाई। आपके विचार, आपकी प्रतिभा, आपके आदर्श, सभी तो मेरी नस-नस में हैं। आप ही तो मुझे अपने मस्तिष्क की प्रतिलिपि कहा करते थे।"

"वह सब तो है। पर तुम्हारी यह 'न' ?

"आप मेरे गुरु हैं, और अब पति भी। आप मेरे तन-मन के स्वामी हैं। उस अभागी 'न' के साथ आप जैसा ठीक समझें, सलूक करें। मैं 'न' नहीं कहूँगी !"

सुषमा की आंखों में उज्ज्वल मोती के समान दो अश्रु-बिंदु छलक आये। पर उसके होठों पर वैसी ही मृदु मुस्कान थी।

विद्यानाथ ने मर्म पीड़ित हो कर कहा—"सुषमा, मैं देख रहा हूँ कि वह 'न' तुम्हारे हृदय में उस स्थान पर आसीन है, जहां मेरे हृदय में तुम हो। वह मेरी अजेय प्रतिद्वन्दी है; सुषमा ! मैं उसे ईर्ष्या की नजर से देख भर सकता हूँ। उसे उस स्थान से च्युत करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है।" कुछ देर चुप रह कर उन्होंने फिर कहा—"मैं सदैव एक उद्ग्रीव

योद्धा की भांति रहा। मैंने जीवन भर युद्ध किये. और कभी साहस न खोया। उस दिन तुम्हारी जीजी को अकस्मात् ही चिर-विदा करने का प्रसंग उपस्थित हो गया तो अपने साहस और धैर्य पर स्वयं मैं ही आश्चर्य-चकित रह गया। परन्तु अब तुम्हारे इस 'न' के सम्मुख, सुषमा, मैं एक हारा हुआ, तिरस्कृत और ऐसा भाग्यहीन पुरुष हूँ, जिसका सब कुछ लुट चुका, सब-कुछ नष्ट हो चुका है।"

विद्यानाथ चुप हो गये। सुषमा भी निर्वाक्, निस्पंद बैठी रही। थोड़ी देर बाद विद्यानाथ ने सुषमा का हाथ अपनी ओर खींच कर कहा—"सुषमा, आओ, तनिक मेरे निकट...और निकट! जो कुछ भी साहस अभी बचा है, उसका मैं उपयोग कर देखूं कि हम लोग कहां तक एक दूसरे को सुखदान कर सकते हैं।"

विद्यानाथ के हाथ के उस हल्के खिंचाव से सुषमा निर्विरोध खिंची उनके हृदय के निकट तक चली गई। विद्यानाथ ने ऐसा अनुभव किया, जैसे अति दूर आकाश में उड़ती हुई पतंग अकस्मात कट गई हो और वह उसकी ढीली डोर को खींच कर अपने पास ढेर कर रहे हों।

(२)

सुहाग-रात के बाद का दूसरा दिन नव-दम्पत्ति के लिये पहाड़ हो गया। दोनों एक बहुत भारी बोझ-सा हृदय में लिये फिरते रहे। विद्यानाथ उस दिन कालेज नहीं गये। तमाम दिन लाइब्रेरी में बैठे रहे। सुषमा दिन भर हारमोनियम पर उंगलियां चलाती रही। बीच-बीच में साहस करके विद्यानाथ

सुषमा के कमरे में जितना सम्भव होता, उतने उत्साह से कहते—"वाह कितना अच्छा बजा रही हो! बहुत मज गया है अब तुम्हारा हाथ! गाओ, गाओ! यह राग तुम्हारे कण्ठ से बहुत मधुर लग रहा है।" तब सुषमा मुस्करा कर एक बार सिर्फ एक दिन पूर्व के उस नवीन पति को, जिससे कुछ और ही रूप में वह परिचित रही थी, कुछ-कुछ सहमी और कुछ-कुछ लजाई आँखों से मुस्करा कर देखती, और जैसे किसी आने वाली विपत्ति से घबरा रही हो, झट स्वर मिला कर गाने लगती। विद्यानाथ 'वाह-वाह' करते। फिर एकाएक जैसे जान बचाकर भाग खड़े होते और लाइब्रेरी में आकर हांफते-हांफते कुर्सी पर पड़ जाते। वह सोचते 'यह क्या ठीक हुआ? सुषमा को बुरा नहीं लगेगा? गीत खत्म होने के पहले ही मैं भाग क्यों आया? कैसा माधुर्य है उसके कण्ठ में! पर...' वह फिर तुरन्त जाना चाह कर भी जा न पाते।

उनके जाने पर सुषमा तुरन्त ही गाना बन्द कर चुपचाप कोच पर लेट जाती, जैसे बहुत थक गई हो। बहुधा वह चौंक कर, उठ कर लाइब्रेरी में पहुंच जाती और जितना सम्भव होता आत्मीय और घनिष्ठता से कहती—"आज क्या आप कोई खास विषय स्टडी कर रहे हैं? इतना क्यों पढ़ते हैं आप? स्वास्थ्य खराब न हो जायगा? कौन किताब है वह? अच्छा जरा मुझे भी सुनाइये न! रूखा-सूखा विषय भी आपके मुह से बहुत सरस लगता है। कालेज क्यों नहीं गये आप? विद्यानाथ भी समयोचित जवाब देते। उनकी बात अन्ततः जल्द ही समाप्त हो जाती। उन्हें न विषय ही मिलता, न शब्द ही। तब सुषमा

जैसे एकाएक कोई बात याद कर भाग खड़ी होती और उसकी कोमल पतली मुलायम उंगलियां हारमोनियम पर फिर थिरकने लगतीं। बीच-बीच में एकाध टूटा-फूटा चरण होठों से बाहर निकल कर हारमोनियम के स्वर में मिश्रित हो कर उसे उत्साहित सा कर जाता।

तीसरे पहर चाय पीने के बाद विद्यानाथ ने सिनेमा चलने का प्रस्ताव किया। अच्छी फिल्म आई है, यह भी कहा। पर सुषमा ने मुस्करा कर अपनी अलस मुद्रा से कहा—"आज तो जी नहीं चाहता। फिर कभी चलूंगी। आप देख आइये।"

विद्यानाथ ने उस बात को टाल कर कहा—"अच्छा चलो, मैं एक नई 'ट्यून' तुम्हें बताऊं।" कह कर वह उसे उसके कमरे में खींच लाये और हारमोनियम पर वह ट्यून बजाने लगे। पर तुरंत ही उन्हें पता लग गया कि सुषमा देखने को तो ध्यान से देख रही है, पर मन न जाने किस आकाश में विचरण कर रहा है। उन्होंने अकस्मात ही हारमोनियम बन्द कर दिया। हँस कर बोले—'अभ्यास ही छूट गया। बड़ी अच्छी ट्यून थी। अच्छा, इसका एक रिकार्ड लाऊंगा।"

सुषमा ने जैसे स्वप्न से जागृत हो कर कहा—"छोड़िये इन सब झगड़ों को! आप मुझे इसी साल एम० ए० फाइनल में बैठा दीजिये। अभी बहुत समय है।"

"समय अब कहां है। तीन महीने तो यों ही बर्बाद हो गये।"

"समय बहुत मिलेगा।"

"कैसे?"

"पहिले आप अधिक से अधिक दो घन्टे पढ़ा पाते थे। उसमें भी बहुत बन्धन-बाधायें थीं। पर अब तो रात-दिन एक करके पढ़ूंगी!"

"तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो पढ़ो फिर!" विद्यानाथ ने खिन्न होकर कहा।

सुषमा ने उधर ध्यान नहीं दिया। उसने आग्रह के स्वर में कहा—"कल ही से मैं स्टडी शुरू कर देना चाहती हूं। आपको पूरा समय देना होगा।"

विद्यानाथ ने फीकी हंसी हंस कर कहा—"मेरा समय तो सब तुम्हारा है ही, सुषमा। उसमें देना-लेना क्या है।"

वह उठे और लाइब्रेरी में आकर बैठ गये।

सुषमा उठ कर बक्स में कपड़े तह कर रखने लगी। फिर उसे आलमारी ठीक करने की सूझी। वह सन्ध्याकाल तक इसी काम में लगी रही।

अंधेरा होने पर घीसू ने आकर कमरे की बत्ती जला कर कहा—"बीबीजी, खाना तैयार है।"

सुषमा ने चौंक कर कहा—"अच्छा!......और बाबू कहां हैं?"

"लाइब्रेरी में हैं, सरकार!"

सुषमा ने लाइब्रेरी में जाकर देखा, अंधेरे में विद्यानाथ चुपचाप बैठे सर-सर चलते पंखे को घूर-घूर कर देख रहे थे। सुषमा ने बत्ती जलादी। प्रकाश होते ही विद्यानाथ ने सुषमा को देख कर कहा..."आओ, आओ! एक ही दिन में पूरी गृहस्थिन बन गई तुम!"

"सब गड़बड़ हो रहा था। बक्स, आलमारी, सब ठीक किया है। आप क्या घूमने नहीं गये? यहां अंधेरे में बैठे क्या कर रहे हैं?"

"दो बार तुम्हें देखने गया। तुम काम में जुटी थीं। लाचार यहां आ बैठा।"

"तो चलिये खाना खा लीजिये! महाराज देर से इन्तजार कर रहा है।"

विद्यानाथ ने उठ कर कहा—"चलो!"

(३)

रामानन्द बाबू ने पसीने से लथपथ अपना भारी भरकम शरीर लिये हाँफते-हाँफते पुकारा—"बिटिया, बिटिया! अरे, ओ, घीसू! सब लोग गये कहां? इस हिन्दुस्तान की ऐसी तैसी!"

सुषमा बैठी रेशमी कपड़े पर फूल काढ़ रही थी। पिता का कण्ठ-स्वर सुन वह आँधी की तरह भागी और गिरती हुई सी सीढ़ियां उतर कर पिता की छाती से जा लगी।

रामानन्द बाबू ने क्रुद्ध होकर कहा—"यह कौन कायदा रहा आने का! कहीं गिर जाती तो एक भी दाँत साबित न बचता। मुह के बल गिरती तो नाक पिचक जाती।"

सुषमा ने हंस कर कहा—"नाक पिचक जाती, तो क्या करते बाबू जी?"

"क्या करता? पेरिस से मंगाता नकली नाक, पेरिस से।"

"लेकिन वार-टाइम में मिलती कैसे?" फिर हंसकर कहा—"जाने दीजिये, नाक पिचकी नहीं! हाँ हिन्दुस्तान की क्या

बात कह रहे थे ?"

"कह रहा था – लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान के लिये जान दो, चन्दा दो, जेल जाओ ! बड़ा प्यारा है हमारा देश, स्वदेश है। पर देखती हो, कैसा है ? यह पसीने से बुरा हाल है। कितनी गर्मी है इस देश में। सेकेण्ड क्लास का गद्दा जैसे आग से भरा हो। पंखा जैसे आग बरसाता हो ! धूल-गर्द से परेशान हो गया। लानत है ऐसे मुल्क पर ! एक मिनट भी यहाँ न रहूँ, पर तेरी मां – " रामानन्द बाबू ही-ही करके हँस पड़े।

सुषमा ने हँस कर कहा—"अच्छा चलिए ऊपर ! कपड़े उतार कर ठण्डे होइये। मैं तब तक शर्बत बनाये लाती हूँ।"

"मगर बर्फ बहुत-सा डालना। लेकिन – लेकिन..."

सुषमा ने रुक कर कहा–"लेकिन क्या बाबू जी ?"

"यह तेरा मुँह।" धूप से सूखे हुये फूल की तरह मुरझाये हुये पुत्री के मुख को देख कर आनन्दी जीव रामानन्द बाबू का सारा हास्य-विनोद क्षण भर में ही बरसाती धूप की भाँति विलीन हो गया।

सुषमा ने हंस कर कहा–"क्या हुआ मेरे मुँह को बाबूजी ? क्या सींग निकल आये ? हाथी के जैसे दो दांत तो नहीं उग आये ?"

"कुछ नहीं, कुछ नहीं।" कहते-कहते रामानन्द बाबू ऊपर चले गये। वहां घीसू सामान ठीक कर रहा था। रामानन्द को देख कर उसने पैर छू कर प्रणाम किया। रामानन्द ने व्याकुल भाव से कहा–"क्या बिटिया बहुत बीमार हो गई

थी घीसू ?"

"नहीं तो, बड़े बाबू, बीमार तो नहीं हुई ।"

"नहीं तो ! अच्छा, अच्छा, देखा जायगा !" वह बड़-बड़ाते हुये इधर से उधर टहलने लगे ।

इसी समय सुषमा ने शर्बत का गिलास ला कर पिता के हाथ में दे कर कहा—"थर्मस में जितना बर्फ था सब ले आई हूँ। और बर्फ अभी दो मिनट में आया जाता है। तब तक आप इसे पीजिये बाबूजी ! पर आप पहले कपड़े तो बदलिये ।"

रामानन्द बाबू कुछ बोले नहीं। चुपचाप शर्बत पी कर कपड़े बदलने लगे। फिर धम से कुर्सी पर बैठ कर बोले—"कहां है प्रोफेसर साहब ?"

"कालेज गये हैं। छुट्टी थी, पर उनका कोई खास काम हो रहा है। उसी काम में लगे हैं।"

"और तुम दिन-दिन भर अकेली यहां क्या करती रहती हो ? सूख कर कांटा हो गई हो ! यह सब क्या है ? ठहरो, मैं वहीं कालेज जा कर उनसे अभी जवाब तलब करता हूं। आखिर इसका मतलब क्या है ?" उन्होंने छड़ी उठाई ।

सुषमा ने हंस कर धीरे से छड़ी उनके हाथ से लेकर कहा—"इस धूप में भला आप कहीं जा सकते हैं, बाबूजी ! मैं अभी घीसू को भेज कर बुलवाती हूँ। साइकिल से दस मिनट में लौट आयेगा।"

घीसू बर्फ लेकर आ गया। उसे कालेज भेज कर सुषमा शर्बत तैयार करने लगी।

रामानन्द ने चिल्ला कर कहा—"रहने दे, रहने दे, सुषमा !

निमोनिया हो जायेगा ! मुझे प्यास-वास नहीं है । तू यहाँ आ तो तनिक !"

पर सुषमा सुवासित शर्बत का शीतल गिलास लिये हँसते हँसते आई, और कहा – "निमोनिया क्यों हो जायगा, बाबूजी !"

"होगा नहीं, इतना ठण्डा शर्बत इतनी गर्मी में पीने से ?"

"कभी नहीं होगा ! लीजिये !"

"तो भुगतना तुम !" रामानन्द गटागट शर्बत पी गये । फिर गिलास एक ओर रख; गहरी सांस ले कर बोले– "अच्छा, अब कह !"

"क्या ?"

"यह मामला क्या है ?"

"कौन मामला, बाबूजी ।"

"तेरी यह हालत कैसी है ?"

"हालत कैसी है ।"

"रंग स्याह – "

"और ?"

"चेहरा ऐसा जैसे पन्द्रह दिन से खाया न हो ?"

"बहुत ठीक ! और ?"

"बातें न बना ! सब बातें कह !"

सुषमा हँसते-हँसते पिता की गोद में बच्चे की भाँति लेट गई । उसने फिर स्नेह से पिता के गले में हाथ डाल कर कहा– "अम्मा ने मेरे लिये क्या २ भेजा है ? पहिले वह दो बाबूजी !"

रामानन्द स्नेह से गद् २ हो गये । कहने लगे– "तुझे

सब चीजें दूँगा। विद्यानाथ को कुछ भी नहीं दूंगा! कहे देता हूँ।"

"मत देना! मुझे दो!" सुषमा ने हंस कर कहा—"अच्छी बात है। देखूं, क्या २ लाये हैं!"

रामानन्द ने चाभी दे कर कहा—"खोल फिर वह ट्रंक!"

सुषमा ने देखा, ऊपर ही एक केस रखा था। उसमें बहुत सुन्दर हीरे के एक जोड़ी इयररिंग थे। उसने बच्चे की भांति उछल कर कहा—"वाह कैसे सुन्दर हैं ये।" फिर आइने के सामने जा उन्हें कान में पहना। और पिता के पास जा कहा—"अच्छा सच कहो, तुम लाये हो या अम्मां ने भेजे हैं?"

"अम्मां ने भेजा है तेरा सिर! मैं लाया हूँ, मैं, कोई पचास जोड़ी बाजार में देखीं। नाक में दम कर दिया जौहरी के। तब यह पसंद किया। कह, कैसा है?"

"बहुत सुन्दर! पर, बाबूजी, यह अम्मां ने भेजा है। तुम झूठ-मूठ अपनी तारीफ कर रहे हो!"

"मैं तो जानता ही हूँ कि तू अम्मां की बेटी है! खैर. यह साड़ी भी तो देख! पसन्द आती है या नहीं? पूरी लोमड़ी है तू!"

जरी के काम की साड़ी देख कर सुषमा ने कहा—"मानती हूं, बाबूजी! यह आप ही की पसन्द है! यह रंग अम्मां नहीं चुन सकती थीं!"

"वह देहातिन क्या जाने! उसकी भेजी चीजें भी देख ले! उस हांडी में हैं।"

"मिठाइयां हैं न?" सुषमा ने भोली बालिका की भांति

हांडी में हाथ डाल कर मिठाई निकाल कर चखना शुरू कर दिया।

इसी समय विद्यानाथ ने आ कर ससुर को नमस्कार किया। रामानन्द एकाग्र चित्त से पुत्री के आनन्द से आनन्द-विभोर हो रहे थे। उद्विग्न हो, खड़े हो कर कहने लगे –"अच्छा, आ गये आप! पर यह सुषमा – जाने दीजिये, जाने दीजिये! हां, ठीक है। अच्छे हैं न? काम बहुत है, क्यों? मैं कह रहा था, बेचारी सुषमा यहां अकेली – अच्छा जाने दीजिये इस बात को! हां, सुषमा को अब मैं ले जाऊंगा। ठीक है न?

विद्यानाथ ने सिर झुका कर कहा–"जैसी आपकी इच्छा हो! पर अभी दो चार दिन रहियेगा न?"

"नही भाई, कल ही सुबह – "

"ऐसा क्यों, बाबूजी? हम लोगों ने तो आपके साथ शिमला जाने का प्रोग्राम बना रखा था! क्यों सुषमा?"—विद्यानाथ ने हकलाते हुये कहा।

सुषमा ने अकचका कर कहा—"हां-हां. शिमला जाने का बाबूजी! रुक जाइये!"

"नही-नहीं, मैं रुक नहीं सकता! तेरी मां ने कहा है। पर अभी वह बात रहने दे तू। इनके लिए शर्बत नहीं बनाया? सारा बर्फ क्या मुझे ही दे दिया?"

"जी नहीं, अभी बहुत है। एक गिलास आपके लिये भी लाऊँ?"

"ऐं! मेरे लिये? कुछ हर्ज नहीं, ले आ। मगर शर्त यह है कि बर्फ ज्यादा हो।"

सुषमा शर्बत लाने चली गई। विद्यानाथ एक कुर्सी पर बैठ गये। रामानन्द बाबू देर तक बातचीत का कोई विषय ढूँढते रहे और विद्यानाथ एक अपराधी की भाँति चुपचाप उनके सामने बैठे रहे।

आखिर रामानन्द बाबू ने नींद से चौंके हुये के समान कहा—"कुछ चिंता नहीं। सब ठीक हो जायगा। मगर जरा अपनी और सुषमा की तन्दुरुस्ती का ख्याल रखिये। वह बालक है। पर आप तो समझदार हैं। ऐसा तो होता ही है। क्या वह आपसे झगड़ा करती है? रोती है?"

"जी नहीं! ऐसी कोई बात नहीं है।"

"यही होना भी चाहिये। झगड़ा करने से क्या फायदा? प्रेमपूर्वक मिल कर...मेरा मतलब यह है कि 'बीति ताहि बिसार दे, आगे की सुध लेय'!" रामानन्द बाबू के माथे पर पसीना आ गया। इसी समय सुषमा ने आकर गिलास पिता के हाथ में दिया।

उन्होंने कहा—"अरे, पहिले प्रोफेसर साहब को दो, बेटी! कैसी पागल हो तुम!"

तब तक विद्यानाथ ने स्वयं उठ कर गिलास ले लिया।

अकस्मात् रामानन्द ने कहा—"पगली बेटी, तू ने तो शर्बत पिया ही नहीं ले, इसे पी!"

"नहीं, बाबूजी! और है। मैं अभी लाती हूं।"

"तो ला!"

सुषमा एक गिलास और ले आई, और पिता के पास बैठ कर पीने लगी। पर पिता के पास पति के साथ बैठने में उसका

दम घुटने लगा। उसने कहा—"बाबूजी, बेसनी पकौड़ी और बैंगनी बनाऊं आपके लिये ?"

"बहुत अच्छे पकौड़े बनाती है, सुषमा ! आपने खाये हैं, प्रोफेसर साहब ? अच्छा बना फिर झटपट !"

सुषमा चली गई। ससुर और दामाद विचित्र झिझक के बीच बातें करने लगे।

"बाबूजी के साथ क्यों नहीं गई, सुषमा ?"

(४)

'आप ही कहिये, क्यों नहीं गई !' सुषमा ने हँस कर कहा।

'मुझे दण्ड देने को तुम बहुत उतावली हो रही हो सुषमा !'

'आप क्या कहते हैं ?'

'मैं जो कह रहा हूँ, वह तुम जानती हो ! तुम्हारा जाना उचित था, अम्मा का हुक्म था। कितनी दुःखी होंगी वह !'

'वह दुखी क्यों होंगी ? फिर कभी चली जाऊँगी।'

'पर इस वक्त चली जातीं, तो तुम्हारा मन बहलता।'

'यहाँ नहीं बहल रहा है क्या ? ओफ ! यह आपने खूब युक्ति दी ! मैं तो हमेशा यहाँ हा रही थी। कभी अम्माँ के पास जाती थी, तो जी ही नहीं लगता था। जीजी...'

'उस बात को जाने दो सुषमा ! यहाँ तुम न सोती हो, न खाती हो। तुम्हारे हास्य में विषाद, विलास में शैत्य, और श्वास में जीवन का अभाव है। तुम मुझे नहीं बहका सकतीं, सुषमा ! मैंने तुम्हें मोहक पक्षी की भांति हवा में उलझते देखा है, तुम्हारे आह्लाद पर ईर्ष्या की है। अपनी हँसी में तुम मुझे भुलाना चाहती हो, पर अभी इतना मूढ़ नहीं हुआ हूँ।'

कुछ देर सुषमा चुप रही। फिर बोली—'आप भीतर-ही भीतर इतना दुःख पा रहे हैं। कहिये, क्या करूं मैं? मैं आपको दुःखी देख नहीं सकती! अम्मा सुनेंगी, तो क्या कहेंगी? जीजी तनिक उदास देखती थीं, तो खाना-सोना भूल जाती थीं। आप हमारे जीवन की ज्योति हैं। आप सुखी रहें, शान्त रहें, तृप्त रहें, इसी में मेरे जीवन की सफलता है।'

'दूसरे शब्दों में यही तुम्हारे तप, साधना का ध्रुव ध्येय है!'

'मैं तप कौन-सा करती हूँ? कहिये तो?'

मुझ जैसे पुरुष को, जो आयु में तुमसे बहुत बड़ा और विधुर है, तुमने हठपूर्वक अपना पति बनाया, जब कि अधिक उपयुक्त जीवन-साथी मिल सकता था! और इस पर हँसती हो, गाती हो, खेलती हो, पिता और माता को भूली हुई हो! अपने अयोग्य पति को उदास भी नहीं देख सकती हो। सुषमा, यह क्या तपस्या नहीं है?'

सुषमा हठात् पति के पैरों के पास कालीन पर बैठ गई। उनका एक घुटना अपनी गोद में लेकर उस पर सिर रख लिया। उसने कहा—'आप जब इस अनावश्यक और असम्बद्ध विषय पर बातचीत किया ही चाहते हैं, तो सुनिये! मैं कहती हूँ कि आप जो कुछ कहते हैं, *यदि वह सत्य भी है*, तो अतिरंजित और अति अद्भुत है!'

'क्यों सुषमा!'

'क्यों कि स्त्री की सामाजिक स्थिति पुरुष की अपेक्षा सर्वथा हीन है। वह समाज का अंग नहीं है, उपांग है। वह आर्थिक और सामाजिक सभी बातों में पुरुष के आश्रित है। वह विवाह

होने पर पति की कमाई, धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य, इन सभी को मालिक की भांति भोगती है। घर में पड़ी-पड़ी बेकार समय काटती है, गाती-बजाती है, कसीदा-फूल काढ़ती है, या माँग-पट्टी करती है, सैर-सपाटे सिनेमा के प्रोग्राम बनाया करती है, पति को मोंदू और अपने को बुद्धिमती बनाने के कोई मौके नहीं चूकती। दिन में छत्तीस बार रूठती है। व्यंग्य, उपालम्भ उस के शस्त्र हैं। वह पति के सर्वस्व को पाकर भी असन्तुष्ट ही रहती है! पति उसे अपेक्षाकृत अयोग्य ही प्रतीत होता है। तिस पर पति उसके सभी अत्याचार सहन करता है, केवल थोड़े सुख दान की आशा से, जिसकी उसे इसलिए बड़ी आवश्यकता होती है कि वह बाहरी जगत् की सभी सामाजिक और आर्थिक जिम्मेदारियों के बोझ से निरन्तर थक कर चूर रहता है। पर कितनी स्त्रियाँ पुरुष को वह सब दे सकती हैं? वे स्त्रियां धन्य हैं; जिन्हें ऐसे पुरुष पति मिले हैं, जो अपना आत्म-समर्पण पत्नी को करने के आदी हैं! पत्नी उन पर अबाध शासन चलाती है, तथा उसके धन से निर्बाध जीवन-यापन करती है।'

'और वैसा ही एक पति तुम्हें मिला है; यही तुम कहना चाहती हो?'

'कहना चाहती तो हूँ, फिर?'

'विद्यानाथ फीकी हँसी हँस कर बोले—'जगत से कहो मुझ से नहीं।'

आपसे क्यों नहीं? आप विश्वास नहीं करते, मैं जानती हूं। पर विश्वास आपको करना होगा!'

'मैं विश्वास करने को तैयार हूँ, सुध'

'किस तरह आप विश्वास करेंगे ? कहिए न !'

'एक बार मुझे 'तुम' कह कर पुकारो, सुषमा ! मुझे सब कुछ मिल जायगा ! यह तुम्हारा 'आप' तुम्हारी 'न' का प्रतिनिधित्व कर रहा है। जब तक तुम ऐसा नहीं करती; हम तुम दूर-दूर हैं। और अब, जबकि हम पति-पत्नी हैं, ऐसा होना कितना बुरा है !'

सुषमा ने धीरे से कहा—'आप इतने बड़े हैं, इतने विद्वान् ! लोग आपका इतना आदर करते हैं कि बाबूजी भी आपको 'तुम' नहीं कह पाते। फिर मैं कैसे कह सकूंगी ? नहीं, नहीं कह सकूंगी !'

'तो फिर, सुषमा ?'

विश्वनाथ एक ठण्डी साँस खींच कर धीरे-धीरे चले गये। सुषमा आँखों में आँसू भरे कुछ देर वहीं बैठी रही। फिर जहाँ पति के चरण थे, वहां हृदय रख कर उसने अपनी ही आत्मा से कहा—'एक बार हृदय में वह भाव उत्पन्न हो जाय, हम छोटे-बड़े का सब भेद-भाव भूल जायँ, हम एक हो जायँ, तो कैसा सुख मिले !' उसकी आँखों से टप-टप आँसू की दो बूँदें टपक पड़ी।

(५)

चन्द्रमा की उज्ज्वल किरण के समान एक नवजात शिशु को आँचल में छुपाए सुषमा अस्पताल के स्पेशल वार्ड के एक कमरे में पड़ी थी। मिनट-मिनट पर पूछ रही थी—क्या अभी गाड़ी का समय नहीं हुआ ? घड़ी ठीक तो चल रही है ? गाड़ी स्टेशन पर भेज तो दी गई है न ?' और सुषमा की माता बार-बार उसे संतोषजनक बातें दे रही थी। सुषमा का पीला किन्तु

माधुर्यपूर्ण मुख आज ओस से भरे श्वेत गुलाब की भाँति शोभायमान था। उसके होठों में मन्द मुस्कान थी। हृदय में उमंग और उत्साह था।

आँधी की भांति विद्यानाथ ने कमरे में प्रवेश कर पुकारा—'सुषमा!'

सुषमा ने होठों में मुस्कान और आंखों में जल भर कर दोनों हाथ फैला दिये। धाय और माता बाहर चलीं गयीं। विद्यानाथ ने झुक कर पत्नी के होठों पर मधुर चुम्बन दिया। फिर कहा—'देखूं, तो तुम्हारे कौशल को।'

सुषमा ने आँचल हटा कर अपने हृदय के टुकड़े को दिखा दिया। वह निश्चिन्त अँगूठा चूस रहा था। उसकी आंखों में विद्यानाथ ने अपना प्रतिबिम्ब पाया।

सुषमा ने कहा—'देखो!'

विद्यानाथ एकटक उसे देखते रह गये। फिर उन्होंने जेब से हीरे का एक बहुमूल्य हार निकालकर सुषमा के गले में डाल कर कहा—सुषमा बड़ा सुख है, है न?'

'है तो!'

'कहो तो यह सुख-दान किसने किया?'

सुषमा के कमल की पँखुरियों के समान होठों से निकला—तुमने?'

'नहीं, तुमने!'

'नहीं, तुमने!'

—नहीं—

—:-:०:-:—

परन्तु, दक्षिणा ने कहा, "नहीं ?"

"नहीं क्यों ? यह भी कोई बात है भला ?" भोलानाथ ने क्रोध से फुत्कार कर के नथुने फुलाकर कहा।

"नहीं, ऐसा हो नहीं सकता," दक्षिणा ने सहज, शांत, और स्थिर स्वर में कहा और फिर वह उठ कर धीरे से चल दी। उसकी 'नहीं' में न तो विद्वेष की जलन थी और न क्षमा का दम्भ था। उसके नीचे झुके हुए पलकों के भीतर एक नीरव संयम झांक रहा था। आप ही कहिये भला, एक दिन जिसे उसने अमल-धवल कोमल नवीन केले के पत्ते के समान शोभा-युक्त अछूता कौमार्य पूर्ण समर्पित किया था, अपने प्राणों के सम्पूर्ण उल्लास को लेकर जिसे पागल की तरह प्यार किया था, जिसकी आंखों में आंखें डालकर जीवन की सार्थकता को समझा था, अब उसी के प्रति निर्मम कल्पना कैसे कर सकती थी ? उसने तो उसी दिन, उसी क्षण सब की निगाह से ओझल उसके सब दोष चुपके-से धो-पोंछ करके साफ कर दिये थे। ऐसा क्रुद्ध शोकाकुल हाहाकार का भाव तो उसके शांत हृदय में उठा ही नहीं।

भीतर आकर उसने देखा, वृद्धा माता चुपचाप निश्चल

बैठी है ! उसने मां के पास आ स्निग्ध स्वर में कहा, "यह क्या मां, अभी तक चूल्हा नहीं जला ! आज रसोई नहीं बनेगी क्या ? बाबू जी के दफ्तर जाने का समय भी हो चुका। हरिया गया कहां ?"

उसने आकुल नेत्रों से इधर-उधर हरिया की खोज की। और फिर उसकी दृष्टि मां के ऊपर आ टिकी। वह [illegible] की तरह पत्थर की मूर्ति की भाँति स्थिर चुप बैठी थीं। क्षण भर उसने मां को देखा, फिर स्थिर गति से रसोई की ओर चल दी। परन्तु इसी समय भोला बाबू लम्बे-लम्बे डग भरते भीतर आकर क्रोध और आवेश में कांपते हुए बोले, "कहे देता हूँ दाखी, सब बातों में तेरी ही नहीं चलेगी। उसे सजा देना मेरा काम है, मैं उसे ऐसा मजा चखा दूंगा कि जिसका नाम। अरे वाह, मेरी फूल सी बेटी के साथ यह धोखाबाजी, इसीलिये मैंने उसे खर्च देकर विलायत भेजा था ? ऐसा पाजी, रास्कल, मैं उसे जेल की हवा न खिलाऊं तो भोलानाथ नहीं। और खर्चे की डिग्री तो हुई रखी है।"

भोला बाबू की गले की नसें ऊपर को उभर आईं और चेहरा विकृत हो गया। परन्तु दक्षिणा ने एक शब्द भी मुंह से नहीं कहा। पिता जी की बात सुनने को एक पग भी रुकी नहीं, वैसी ही शांत भाव से रसोई में चली गई।

वृद्धा ने कहा, "हुआ, अभी तुम जाकर स्नान-पूजा से निपट लो, तब तक मैं थोड़ा जलपान बनाये देती हूँ। अब इस समय रसोई तो बन नहीं सकती। मैं भी देखूंगी, मेरी बेटी के भाग्य पर पत्थर मारकर कौन कैसे सुख से बैठता है ?"

पत्नी की बात से भोला बाबू को बहुत सहारा मिला। बेटी ने जो उनके रोष का साथ नहीं दिया, उसकी खीझ पत्नी के इस समर्थन से कुछ बुझ गई। उन्होंने थूक निगल कर कहा, "देखूंगा, देखूंगा।"

और वे आगे की बात कह न सके। पत्नी रसोई घर में चली गई थी! हरिया साग-तरकारी लेकर आ गया था। भोला बाबू और कुछ न कह कर स्नान-गृह में घुस गये।

२

उसी दिन तीसरे पहर दक्षिणा को अन्ना दीदी ने पकड़ा। 'अन्ना दीदी' दक्षिणा के मुंह से निकला अन्नपूर्णा का कोमलतम संस्करण है। अन्नपूर्णा विधवा है, दो बच्चों की मां है! उसके पति बहुत जमीन जायदाद छोड़ गये हैं। वह पढ़ी-लिखी दुनिया देखी चालीस साल की आयु की महिला है। उसने पति के साथ विश्व-भ्रमण किया है, स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा सुनी और की है। वह स्त्री-स्वातन्त्र्य की बहुत बड़ी समर्थक है। स्त्रियों की सभा-सोसाइटियों में उसका आना-जाना है। दक्षिणा ने जो उसके नाम का यह कोमलतम संस्करण किया है, सो खूब प्रसिद्ध हो उठा है। अब तो सभी लोग उसे अन्ना दीदी के नाम से ही पुकारते हैं। अन्ना दीदी जैसी पठित और प्रगल्भा रमणी है, वैसी ही मिष्टभाषिणी और स्थिर-मति भी है। लोग उससे विवाद-बहस करने का साहस ही नहीं कर सकते, उसकी बात चुपचाप मान लेते हैं। परंतु जिस अन्ना को बहुत लोग इतना मानते हैं, आदर करते हैं, वह दक्षिणा का मन से आदर करती है। स्नेह की बात जुदा है और आदर की जुदा। अन्ना-

पूर्णा जैसी महिला इस कच्ची आयु की मितभाषिणी दाक्षिणा का जो इतना आदर करती है, उसका कारण है कि दक्षिणा के गौरव को उसने पहचान लिया है। वह जानती है, यह कुसुम-कोमल बालिका कैसी ज्ञानवती है, वह स्त्रीत्व के तेज से परिपूर्ण है। उसमें कितना गौरव है।

अन्ना दीदी को दक्षिणा की माँ ने बुला भेजा था। अपने मन की व्यथा और आग दोनों ही उसने रो-रोकर अन्ना को बता दी। उसने सुबकियां ले-लेकर कहा, "अन्नपूर्णा! भला तुम्हीं कहो, मेरी बेटी के साथ यह अन्याय, क्या मैं चुपचाप सह लूं? तुम तो बहुत पढ़ती हो, सभा-सोसाइटियों में जाती हो, स्त्रियों के अधिकारों और स्वार्थों की बड़ी हिमायती हो, क्या मेरी दक्षिणा उस जानवर का ऐसा अन्याय चुपचाप सहन कर लेगी? अरे, मेरी फूल-सी बेटी पर सौत लाया है, सौत!"

अन्नपूर्णा को वृद्धा का अभियोग समर्थन-योग्य प्रतीत हुआ। वृद्धा की मांग सर्वथा उचित थी। दक्षिणा की ओर से क्षतिपूर्ति और निर्वाह का मुकदमा अवश्य होना चाहिये। अन्नपूर्णा उससे सहमत हुई। परन्तु जब उसने दक्षिणा की 'नहीं' को 'हाँ' में परिणत करने का मन ही मन संकल्प कर लिया, उसने वृद्धा से एक शब्द भी नहीं कहा, चुपचाप उठकर दक्षिणा के पास गई।

दक्षिणा पिता की बैठक साफ करने में लगी थी। इधर-उधर बिखरी हुई पुस्तकों, कागजों और सामग्री को सहेज कर ठिकाने से लगा रही थी। उसकी साड़ी मैली थी, बाल रूखे थे और ओंठ सूख रहे थे। पिता को जलपान कराकर जब वह मां

वह सत्य नहीं है। परंतु तुम नाराज न होना, इस सत्य को सत्य-विलासी दल के नर-नारी के मुंह ने भांति-भांति के आन्दोलन करके ऐसा गन्दा कर दिया है कि उसे छूने में भी घिन होती है।"

"घिन कैसी होती है, तनिक सुनूं तो?"

"तुम्हारा तो सब देखा-सुना है दीदी, सुनोगी क्या। विलायत के ही लोगों को देखो, वे कैसी आज़ादी से प्रेमाभिनय करके कितने उल्लास से विवाह करते हैं। उनके बीच तो माता-पिताओं के माध्यम की परम्परा नहीं है। स्वेच्छा है, प्रेम है, ठोक बजा कर किया हुआ सौदा है, फिर क्या कारण है कि तनिक २ सी बातों पर, छोटे २ कारणों को लेकर वहां विवाह-विच्छेद हो जाते हैं। वहां की अदालतों के लिए, समाज के लिए, स्त्री के लिए, पुरुष के लिए वह एक मामूली बात हो गई है। कहो तुम दीदी, क्या उन्हें ऐसा करने में तनिक भी चोट नहीं लगती? कहीं इतना सा भी दर्द नहीं होता? मैं कहती हूं, यही यदि उनका सत्य प्रेम है, पति-पत्नी के समान अधिकार का सच्चा रूप है, तो यह छूने क्या, आंखें उठा कर देखने के भी योग्य नहीं। मुझे तो यही आश्चर्य है कि वे लोग अपनी सभ्यता का गर्व किस बूते पर किया करते हैं।"

अन्ना दीदी की आंखों में आँसू भर गये। यह उसकी हार के आँसू थे। उसे जवाब नहीं सूझ रहा था। दक्षिणा सूखे मुंह और सूखे ओठों से अन्ना दीदी की ओर देखती रही, उस दृष्टि को सहन न कर उसने दक्षिणा को खींच कर अपनी छाती से लगा लिया। वह बहुत देर तक उसके सिर पर हाथ फेरती

रही। बड़ी देर बाद उसने कहा—"कैसे सहेगी दाखी, मेरे पास शब्द नहीं, कैसे तुम्हें सान्त्वना दूं।"

दक्षिणा बहुत देर चुपचाप अन्नपूर्णा की गोद में लेटी रही, फिर उसने सिर उठा कर कहा, "दीदी, जल्दी-जल्दी आया करो। दो मिनट ठहरो, मैं चाय बनाती हूँ। मां को कुछ खिला पिला दो, कल से इन्होंने एक बूंद पानी तक नहीं पिया है।"

"अरे, इसी से तेरा मुंह···ठहर मैं रसोई में जाकर चाय और जलपान बना लाती हूँ।"

"तुम यहां ठहरो दीदी, मैं जाती हूं।"

परन्तु दोनों साथ ही साथ रसोई में जाकर चाय का सरंजाम जुटाने में व्यस्त हो गयीं।

(३)

पंद्रह बरस बाद। पुरानी सारी दुनियां बदल चुकी थी। जीवन उषा की रक्ताभ पीत प्रभा, ढलती दुपहरी में बदल चुकी थी। पुरुष की लोलुप दृष्टि जिस लिए नारी को परेशान करती है, लज्जा को पीड़ित करती है, आज उससे तो दक्षिणा को मुक्ति मिल चुकी थी। इतने दिन बाद एकाएक पति ले जाने के लिए आये थे। उन्होंने एक अनुताप-पूर्ण पत्र लिख कर दक्षिणा को अपने असहाय जीवन से सूचित किया था और यह भी लिखा था कि उनके जीवन में अब केवल दक्षिणा ही दक्षिणा शेष है।

दक्षिणा के हृदय में एकान्त मिलन की जरा भी व्यग्रता न थी: फिर भी ढलते हुए यौवन और तब से लेकर अब तक के दैहिक क्रम-विकास पर आज अपरिचित रूप ही से उसका ध्यान

आकर्षित हो रहा था। उन दिनों की वह चाह अब न थी। आंखें चार होते ही आँखों के कोनों से निकलती आग की चिनगारियाँ बुझ-बुझा कर राख हो गई थीं, वह राख भी आंसुओं से घुल कर कहाँ की कहाँ पहुंची थी। १५ वर्ष की मूक वेदना, आत्म संयम और चिरदमन की जो रेखायें उसके मुख पर अंकित हो गई थीं, वे तो दूर से पढ़ी जा सकती थीं। सो अब अन्ना दीदी ने लपकते हुए आकर उससे कहा, "यह क्या? सन्ध्या होने को आई, तूने न कपड़े बदले, न बाल बनाए। उठ, मैं चोटी गूंथ दूं। अम्मा होती तो क्या इसी भांति······"

अन्ना दीदी की आंखें भर आईं परंतु दक्षिणा ने सूखी आँखों से उनकी ओर देख कर कहा, "नित्य ही तो ऐसी ही रहती हूँ दीदी, इस बेला मुझे बाल सँवारने की आदत नहीं।"

"न सही, पर आज तो!"

"आज क्यों?"

"तू ऐसी बच्ची है, फजूल बक-बक न कर! उठ, चोटी गूँथ दूं।"

"चोटी गूंथना है तो गूंथ दो दीदी, परंतु इससे लाभ?"

"लाभ? इतने दिन बाद वे आये हैं, सो ऐसे वेश में मिलेगी तू!"

"पर मुंह तो बदल नहीं सकूंगी।"

"न सही, पर कपड़ा-लत्ता···"

"व्यर्थ है दीदी, जिस रूप का प्रयोजन और आकर्षण दोनों ही खतम हो चुके, अब उसे कृत्रिम रूप से सजा कर उन्हें यदि धोखा दूं तो क्या यह अच्छी बात होगी?"

"धोखा क्या ?"

"कि नहीं, अभी खत्म नही हुआ, यही दिखा कर।"

"ओह, किन्तु ......"

"किन्तु क्या दीदी, कहो तो—स्त्री की देह ऐसी तुच्छ चीज़ है कि उसके रूप सौष्ठव को छोड़ कर उसका और कोई उपयोग ही नहीं ?"

अन्ना दीदी अब रो दी। अन्ना नहीं, उसका चिर वैधव्य रो उठा। उन्होंने कहा—"दीदी, इन भाग्यहीन पुरुषों की अभिलाषाओं की बात न पूछ। तुझे दुनिया की तरफ नहीं देखना हो तो मत देख, परन्तु आदमी की ओर तो देख, उसके दुर्भाग्यपूर्ण अपूर्ण और असयत व्यक्तित्व को तो देख।"

"सो तो मैंने अपने जीवन में देखा ही है, दीदी।"

"तो देख, भाग्य-दोष से हो या स्त्री जाति में जन्म लेने के कारण, हमें अपना जीवन उत्सर्ग के मार्ग पर तो ले जाना ही है। यह शृङ्गार जो हमें करना पड़ता है सो क्या अपने लिये ? इसे क्या हम अपनी आँखों देखती हैं ?"

"नहीं, तुम्हारी बात मानती हूं। हम अपने इस शृङ्गार को अपनी आंखों से नहीं देखतीं, पुरुष की आँखों से देखती हैं, परंतु दीदी, तुम्हारा जो यह उत्सर्ग है सो सत्य नहीं। मैंने इसे कभी नहीं माना है, अब भी नहीं मानूंगी।"

"क्यों भला ? क्या तू समझती है, हम लोगों में उत्सर्ग होने का बल है ही नहीं ?"

"क्यों नहीं, बहुत है।"

"तो फिर ?"

"फिर ? उत्सर्ग का बल होने ही से क्या होता है दीदी, प्रवृत्ति होनी चाहिए, अन्तःप्रेरणा होनी चाहिए। निराशा और आँसुओं से भीग कर भी कहीं उत्सर्ग होता है ?"

"तू समझती है कि स्त्रियों में उत्सर्ग की प्रवृत्ति ही नहीं है ?"

"प्रवृत्ति है, पर यह प्रवृत्ति उनके भीतर जो नारी की जाग्रत सत्ता है न, उसकी पूर्णता से नहीं, शून्यता से उत्पन्न होती है। उससे न तो नारी जाति का भला हुआ, न वे पुरुष का भी कुछ भला कर सकीं !"

"दीदी. मैं तो समझती रही हूं कि त्याग, उत्सर्ग और प्यार सब एक ही वस्तु हैं और उत्सर्ग स्त्री का स्वभाव है।"

"नहीं दीदी स्वभाव नहीं, अभाव, है। भाग्य ने तुम्हें चिर वैधव्य दिया दीदी. तुम्हें त्याग और विसर्जन का जीवन अपनाना ही पड़ा। अब तुम्हीं कहो—इसमें तुम्हें कितना तप करना पड़ा ? कितनी निष्ठा खर्च करनी पड़ी ? अब तुम मुझसे क्या कहना चाहोगी कि वैधव्य का श्रेय जीवन है, जहाँ तप है, त्याग है, उत्सर्ग है।"

"ओह ! नहीं, नहीं, मैं यह कभी न कहूँगी। मैं तो कहूँगी, वैधव्य की अपेक्षा तो स्त्री के लिए एक हिंस्र पशु की पत्नी बनने में कहीं नारीत्व की सार्थकता है।"

"तो दीदी, तुम्हारी यह बात जितनी ही सत्य है, उतनी ही भयानक भी है। यह तुम्हारे उस समान अधिकारों की परम्परा से बिलकुल ही पृथक सत्य है। और मैं उसे ठीक सत्य स्वीकार करती हूं।"

अन्ना दीदी ने बहुत आँसू बहाये। स्नेह से दक्षिणा को अंक में भर लिया। कहा, "दीदी, तेरा सत्य मैंने इतने निकट रह कर भी कभी नहीं समझा। पर आज समझा। तेरे पति ने जो तेरा तिरस्कार किया, तुझे धोखा दिया उसकी जो तूने कभी किसी से शिकायत नहीं की और संसार भर के युग के मानव-जान स्वीकृत इस सम्बन्ध के प्रति जो तूने इतनी जबर्दस्त अवज्ञा की, उसका भेद भी जाना, परंतु दीदी, अविचार से केवल एक ही पक्ष क्षतिग्रस्त नहीं होता, दोनों ही पक्षों को आघात लगता है। उस दिन जब तुझे दुलहिन के रूप में तेरे पति ने पाया था, तब उसने अपने सौभाग्य की ओर देखा ही नहीं था। आज उसे यह सूझ आई है, सो तू श्रृंगार करके जो खत्म हो चुका, "अभी है, वह अभी है," यह प्रमाणित करके उसे धोखा देना नहीं चाहती, सत्य रूप में जो है, उसके सामने जाना चाहती है, सो ठीक है।"

"यही बात है, दीदी। जो क्षणभंगुर है, उसकी ओर पुरुषों को देखने का चस्का लग गया है। वह इस सिल की अपेक्षा उस फूल को ज्यादा पसंद करते हैं। सत्य क्या है, इसकी जांच का माप-दण्ड तो उसके पास है ही नहीं। परतु हम स्त्रियां तो जानती हैं कि जीवन चाहे जितना भी क्षणभंगुर हो उसका सब कारबार स्थायित्व को लिए हुए है। और इसी से हमारे लिये उस फूल की अपेक्षा यह सिल-लोढ़ा ही अधिक सत्य है। इसके जल्दी सूख कर झड़ जाने का भय नहीं है।"

"सो आज उस सिल-लोढ़ी ही की पूजा का पवित्र दिन है!"

"कौन जाने, तुम तो जानती ही हो दीदी, पुरुषों को इसकी आदत नहीं।"

"तेरी जैसी स्त्रियां पुरुषों को ऐसी आदत डाल देती हैं जो युग-युग तक उनका भला करती हैं। तूने पति को अब तक दिया ही है, उससे कभी कुछ लिया नहीं। पिता के इतना कहने पर भी डिग्री के रुपये नहीं लिये।"

"तुम से तो कुछ छिपा रहा नहीं, दीदी। माँ और बाबू जी के न रहने पर तुम्हीं एक रही जिसका मुझे सहारा रहा।"

"पर मुझसे भी तो तूने कभी एक धेला नहीं लिया। तूने कुली-मजदूरों के कपड़े सी-सीकर गुजर की, पर जिस पुरुष ने पति होकर त्याग दिया, उसका अन्न मुंह में देकर, उसी के दिये वस्त्र पहन कर आबरू बचाना स्वीकार नहीं किया।"

दक्षिणा इस बार रो दी। उसने कहा, "दीदी, इतनी ओछी बनने से पहिले तो मैं कुएँ में कूद कर मर जाना अच्छा समझती।"

—:-:o:-:—

दियासलाई का बक्स

तबीयत बहुत खराब थी। अकस्मात् जोड़ों में दर्द उठ खड़ा हुआ था। चलने फिरने से बिल्कुल लाचार हो गया था। फिर भी यात्रा करनी पड़ी। सर्दी काफी थी—शायद थोड़ा थोड़ा पानी गिर रहा था। रात भर मैं रजाई से मुँह लपेटे अपनी बर्थ पर पड़ा रहा—कुछ सोते, कुछ जागते। टूँडला स्टेशन पर सुना, कुछ यात्री उतरे हैं और कुछ नवीन चढ़े हैं। उन नवीनों में एक नवीना का भी अनुमान हुआ। अनुमान की बात इस लिए कहता हूं कि रजाई से मुँह बाहर निकालने और आँखें खोल कर एक बार देख लेने को आलस के मारे जी न चाहा। चुपचाप पड़ा रहा। ऊँची एड़ी के जूतों की तीव्र खट-पट और खूब सरपट, किन्तु सुकोमल, अंगरेजी सम्भाषण से ही समझा—अवश्य कोई नवीना है, हिन्दुस्तानी नहीं, विलायती। यह भी मैं समझ गया कि बिल्कुल मेरे बराबर की बर्थ पर उसने बिस्तर फैलाया है। बिस्तर की मनोहर गंध अयाचित रूप से नाक में घुसकर प्रिय सन्देश निवेदन-सा करने लगी। यह भी अनुमान से ही समझा कि दूसरे कोई भद्दे स्वरवाले अधेड़ विलायती साहब ऊपर की बर्थपर जमे हैं और वहीं से उस चपल बाला को मेघ-गर्जना के स्वर में उत्तर प्रत्युत्तर दे रहे हैं। फिर

समझा, कुछ बच्चे भी आये हैं। साथ में बच्चों की मां भी है। वह हिन्दुस्तानी है और नौकर से अपना ढेर सा सामान रखवाने, बच्चों की व्यवस्था करने आदि में लगी है।

रात के दो बजे यह खटपट अच्छी नहीं लगी। डब्बे का प्रकाश-कण कहीं से भीतर न घुस आय, इसके लिए अच्छी तरह रजाई लपेट कर दीवार की ओर मुँह करके सो रहा; यथार्थ में सोया नहीं, चुप पड़ कर उस चपला युवती की सरपट बातें और उस अधेड़ पुरुष की गुर्राहट के समान हुंकृति सुनता रहा। उनकी बातों से इतना मालूम हो गया कि बाला अकेली सिंगापुर से आ रही है। उसकी आंखों के आगे सिंगापुर का पतन हुआ है। उसने जापानी सैन्य को भेदकर भाग आने में विशेष साहस और दुर्दम्य पौरुष परिचय दिया है। अब वह लखनऊ किसी सम्बन्धी के यहां जा रही है। उसकी बातचीत सुनकर नींद उड़ंछू हो गई। बड़े चाव से बातें सुनने लगा। एक बार इच्छा हुई कि रजाई से मुंह निकाल कर उस वीरांगना को भलीभाँति आंख उघाड़कर देख लिया जाय। इतना करने का कष्ट उठाया भी, तो देखा कि वह डब्बे की बत्ती गुल करके मुंह फेर कर सो रही है। मैंने कहा—कुछ हर्ज नहीं, लखनऊ पहुंचते पहुंचते तो सौ बार खूब अच्छी तरह देख सुन लेंगे और मैं फिर रजाई में मुँह लपेट कर निद्रादेवी की आराधना करने लगा।

(२)

आंख खुली तो देखा, डब्बा कट कर कानपुर के स्टेशन पर एक शून्य प्लेटफार्म से लगा डाकगाड़ी की प्रतीक्षा में खड़ा है। सूर्योदय हो रहा था और सुनहरी धूप की किरणें बड़ी मनोरम

लग रहीं थीं। उठ कर देखा, बराबर की बर्थपर कोई नहीं है, खाली बिस्तर फैला है। ऊपर की दोनों बर्थ भी सफाचट हैं। नीचे की दूसरी बर्थ पर वही भद्र महिला अपने दो बच्चों को लिये सो रही थी। मैंने खिड़की का शीशा गिरा दिया और झाँक कर बाहर इधर उधर देखा। चारों ओर सन्नाटा था। प्रधान प्लेटफ़ॉर्म पर कोई गाड़ी खड़ी थी। मैं उठ कर नित्यकर्म से निवृत हुआ, हाथ मुंह धोया और इस ताक में चारों ओर से रजाई लपेट कर बैठ गया कि कोई बैरा खानसामा आय, तो चाय मगाई जाय।

थोड़ी ही देर में वह युवती आ गई—खटाखट ऊंची एड़ी के जूते खटखटाती, सीटी बजाती और गुनगुनाती हुई वह छड़ी के समान सीधी, पतली और लचकदार थी। सिर पर खूब बड़ी टोपी थी। बदन पर फ्राक, घुटनों तक स्कर्ट और पैरों में सिल्क के मोजे तथा पांवों में ऊँची एड़ी के जूते। उम्र अधिक से अधिक १६-२० के लगभग होगी लम्बी अवश्य वह आवश्यकता से अधिक थी, पर सच पूछा जाय तो यौवन के और अंग उसके शरीर में उतने प्रस्फुटित नहीं थे। मुंह पर भी बालभाव था। सिर्फ होठों पर बेहद लिप स्टिक पेण्ट किया हुआ था। खूब पतली कमर में गहरी काली कसी पेटी खूब ही सज रही थी। हाथ में जरा बड़ा सा पर्स था। आते ही उसने पर्स बर्थ पर फेंक दिया। उसी भांति सीटी बजाती हुई बाथ-रूम में घुस गई और दो ही मिनट में लौट कर बेतकल्लुफ़ी से अपनी बर्थ पर पूरे पैर फैला कर बैठ गई। तकिए के नीचे से उसने सिगरेट का बक्स निकाला, क्षण भर मेरी ओर देख कर डब्बे

के उस ओर लेटी हुई महिला से जो अब जाग गई थी, मुस्करा कर संकेत से दियासलाई का बक्स मांगा।

सच पूछा जाय तो उसने यह बक्स मुझी से मांगा था। पर न जाने क्यों, इस साहसी, चपल और दबंग युवती को मुझ से मांगते शर्म लगी और वह केवल क्षण-भर मेरी ओर देख कर पास में लेटी महिला ही से दियासलाई मांग बैठी। परन्तु उसका मतलब स्पष्ट था कि मुझे तुरन्त ही बक्स पेश कर देना चाहिए था। और उसे इसका विश्वास भी था, इसी से उसने एक सिगरेट हथेली पर जरा ठीक कर मुँह से लगा ली थी। सिगरेट पीने की आदत न होने के लिए जीवन में सच पूछिये तो पहली बार उसी दिन अफसोस हुआ और वह खुल्लम खुल्ला दियासलाई न मांग बैठे' इस भय से मैं खिड़की से बाहर सिर निकाल कर दूर खड़ी मालगाड़ी के डब्बों पर लिखे नम्बर पढ़ने लगा।

लेटी हुई महिला के पास दियासलाई नहीं थी; परन्तु उसे शायद विश्वास था कि मैं सभ्यता के नाते अवश्य उस युवती को दियासलाई पेश कर दूंगा। पर जब मैंने मुँह फेर लिया, तो उसने कहा—'जरा ठहरिये, मेरा चपरासी अभी आता होगा, मैं अभी आपको दियासलाई मँगा देती हूँ।' युवती सिगरेट मुँह से हाथ में लेकर फिर सीटी बजाने लगी।

(३)

दुर्भाग्य से चपरासी के पास भी दियासलाई का बक्स न था। उसने व्यग्र भाव से इधर-उधर देखा, कोई आदमी भी नजर नहीं आया। कुछ दूर पर दो कुली बैठे सुस्ता रहे थे।

उसने उन्हें पुकार कर कहा—"भैया, तुम्हारे पास दियासलाई हो, तो जरा दे दो। मेम साहब को सिगरेट पाने के लिये चाहिए।" दो-तीन बार कहने पर एक कुली अलकसाता हुआ उठा वह कोई २०-२५ साल का युवक होगा—भरा हुआ शरीर, भींगती रगें, गेहुंआ रँग, मस्त आँखें। उसने डब्बे के पास आ कर एक बार चपरासी को और फिर एक बार मेम साहब को देखा। मेम साहब अभी मुस्करा रही थीं! कुली ने टेंट में से दियासलाई का बक्स निकाला और खिड़की में होकर बर्थ पर फेंक दिया। परन्तु बक्स बर्थ पर टकरा कर नीचे जा गिरा। मैंने चाहा कि झुक कर उसे उठा लूं और युवती को दे दूं, पर उसने स्वयँ तेजी से झुक कर उसे उठा लिया और तत्काल ही खिड़की से बाहर प्लेटफार्म पर फेंक दिया। इसके बाद ही उसने हाथ की सिगरेट भी प्लेटफार्म पर फेंक दी। क्रोध से उसका चेहरा लाल हो गया और वह दीवार से पीठ सटा कर चुपचाप डब्बे की छत को ताकती बैठी रही।

नवयुवक कुली आश्चर्य-चकित था। उसने दियासलाई का बक्स प्लेटफार्म पर से उठा कर पूछा—"क्यों, क्या बात है? यह बक्स क्यों फेंक दिया आपने?

युवती ने टूटी-फूटी हिन्दी में कहा—'अच्छा है, जाओ. नेई' चाहटा।'

कुली बड़बड़ाने लगा। उसे यह अपना अपमान प्रतीत हुआ। युवती ने कहा—'क्या इस तरह फेंक कर दिया जाता है? भीतर आकर हाथ में क्यों नहीं दिया?'...

भोला युवक कुली गुस्से में भर गया। उसने मुझे सम्बोधन करके कहा—"ग़रीब आदमी की मुश्किल है, बाबूजी! न

देने, तो कहते—एक दियासलाई के लिए इन्कार कर दिया। हाथ में देते तो कहते—बदमाश हाथ में देता है! और डर से फेंका, तो कहते—बेअदबी हो गई!"

मैंने मुस्करा उसे चले जाने को संकेत किया। मेरा हृदय युवती के तेज व दर्प के दर्शन से आनन्द गद्गद हो रहा था। १९-२० वर्ष की एक निरीह बालिका रण विभीषिका को अपने नन्हें नन्हें चरणों से कुचलती हुई कैसे हजारों मील की यात्रा करके भी शान्त-मस्त-निश्चिन्त चली जा रही है?

पैरों में काफ़ी तकलीफ़ होते हुए भी मैं लकड़ी का सहारा लेकर उठा। मैंने विनीत भाव से कहा—'आपके लिए मैं दियासलाई का बक्स ले आता हूं।' पर वह मेरे चलने का ढंग देख कर लपक कर उठी और दोनों हाथों से मुझे पकड़ कर पूछा—'क्या आपके पैरों में दर्द है? ओह, आप बिल्कुल तकलीफ़ मत कीजिये। मुझे बिल्कुल जरूरत नहीं है। न होगा, तो मैं स्वयं उधर जाकर ले आऊँगी।'

परन्तु मैं जाने पर आमादा था। धीरे-धीरे लकड़ी के सहारे प्लेटफार्म पर चल कर, पुल चढ़ कर, मैं दूसरी ओर गया। तीन पैसे का एक दियासलाई का बक्स खरीदा और चार पैसे एक कुली को देकर कहा—"वह सामने जो डब्बा कटा खड़ा है, उसमें एक छोटी सी मेमसाहब बैठी हैं। यह बक्स दौड़कर उन्हें दे आओ। पर देखना, भीतर डब्बे में जाकर उनके हाथ में देना, बाहर ही से मत फेंक देना।" और वह दौड़ता हुआ, रेल की लाइनों को कूदता हुआ, जाकर दियासलाई का बक्स युवती को दे आया। जब मैंने अपनी आंखों से उसे सिगरेट जलाते देखा, तो मेरा हृदय आनन्द से खिल उठा।

४

लौट कर देखा, मेरा बिस्तर फिर से झाड़कर बहुत नफ़ासत से ठीक किया हुआ है। जब मैं अपनी कमजोर जकड़ी पर जोर देकर डब्बे में चढ़ने लगा, तो उसने लपक कर मुझे दोनों हाथों में एक प्रकार से उठा ही लिया। मुझे बिस्तर पर बैठा कर अच्छी तरह रजाई में लपेट दिया। अब फिर पहले वाली प्रफुल्लता, मस्ती और आनन्द की रेखा उसके चेहरे पर लौट आई थी। उसने पाश्चात्य सभ्यता के अनुसार एक बार भी मुझे कष्ट करने के लिये धन्यवाद नहीं दिया, प्रत्युत बार-बार मेरी टांगों के दर्द की बाबत पूछ-ताछ करती रही। बीच-बीच में अन्य इधर-उधर की बातें भी हुईं। युद्ध की आंखों-देखी विभीषिकाएँ, जापानियों के व्यवहार और युद्ध-विपल्व के रोमांचकारी दृश्यों आदि का वह अनायास ही वर्णन करती जाती थी।

मैं सोच रहा था—लखनऊ शहर अतल-पताल में छिप जाय, यह गाड़ी इसी भांति अनन्त काल तक चलती रहे, इसी भांति तेज, दर्प, आत्म-सम्मान और आत्म-निर्भरता की ; प्रेम, आनन्द मस्ती, सेवा, विनय और तत्परता की परिपूर्ण नवीना नारी अनन्त काल तक मेरे सामने बैठी लिप-स्टिक से अतिरंजित होंठों से फ़काफक सिगरेट का धुआं निकालती हुई जल्दी जल्दी बोलती रहे, हँसती रहे, गुनगुनाती रहे और सीटी बजाती रहे। एक बार और वह क्रुद्ध हो कर दियासलाई का बक्स फेंके और मैं असंयत हो कर फिर उसके लिये दियासलाई खरीदने एक बार उन्हीं रोगी टांगों को घसीटते हुए जाने का सत्साहस करूं!

मास्टर साहब

—:o:—

भामा भरी बैठी थी। मास्टर साहब ने ज्यों ही घर में क़दम रखा उसने विषदृष्टि से पति को देख कर तीखे स्वर में कहा—"यह अब तुम्हारे आने का वक्त हुआ है ? इतना कह दिया था कि आज मेरा जन्मदिन है; चार मिलनेवालियाँ आवेंगी, बहुत कुछ बन्दोबस्त करना है, ज़रा जल्दी आना। सो उल्टे आज शाम ही कर ली।"

"पर लाचारी थी प्रभा की मां, देर हो ही गई।"

"कैसे हो गई? मैं कहती हूँ तुम मुझसे इतना जलते क्यों हो ? इस तरह मन में आंट-गांठ रखने से फ़ायदा ? साफ क्यों नहीं कह देते कि तुम्हें मैं फूटी-आंख भी नहीं सुहाती ?"

"यह बात नहीं है प्रभा की माँ, तनखाह मिलने में देर हो गई। एक तो आज इन्सपेक्टर स्कूल में आ गये, दूसरे आज फीस का हिसाब चुकाना था। तीसरे कुछ आफिस का काम भी हैडमास्टर साहब ने बता दिया; सो करना पड़ा। फिर आज तनखाह मिलने का दिन नहीं था—कहने-सुनने से हैडमास्टर ने बन्दोबस्त किया।"

"सो उन्होंने बड़ा अहसान किया। बात करनी भी तुमसे आफत है ! मैं पूछती हूँ, देर क्यों कर दी—आप लगे आल्हा गाने। देखूं रुपये कहाँ हैं ?"

मास्टर साहेब ने कोट अभी अभी खूंटी पर उतार कर टाँगा था, उसकी जेब से पर्स निकाल आंगन में उलट दिया। दस दस रुपये के चार नोट जमीन पर फैल गये। उन्हें एक एक गिन कर भामा ने नाक-भौं सिकोड़ कर कहा—"चालीस ही हैं, बस ?"

"चालीस ही तो तनखाह पाता हूं, ज्यादा कहां से मिलते ?"

"अब इस चलीस में क्या क्या करूं ? ओढूं या बिछाऊं ? कहती हूँ, छोड़ दो इस मास्टरी की नौकरी को; छदाम की भी तो ऊपर आमदनी नहीं है ! तुम्हारे ही मिलनेवाले तो हैं वे बाबू दाताराम—रेल में बाबू हो गये हैं, हर वक्त घर भरा-पुरा रहता है। घी में घी, चीनी में चीनी, कपड़ा-लत्ता, और दफ्तर के दस कुली-चपरासी हाजिरी भुगताते हैं वह जुदा। वे क्या तुमसे ज्यादा पढ़े हैं ? क्यों नही रेल-बाबू हो जाते ?"

"वे सब तो गुदाम से माल चुरा कर लाते हैं प्रभा की माँ, मुझसे तो चोरी हो नहीं सकती। तनखाह जो मिलती है उसी में गुजर-बसर करना होगा।"

"करना होगा, तुमने तो कह दिया ! पर इस मंहगाई के जमाने में कैसे ?"

"इससे भी कम में गुजर करते हैं लोग, प्रभा की मां।"

"वे होंगे कमीन, नीच। मैं ऐसे छोटे घर की बेटी नहीं हूँ।"

"पर अपनी औक़ात के मुताबिक ही तो सबको अपनी गुजर-बसर करनी चाहिये ! इसमें छोटे-बड़े घर की क्या बात है ? अमीर आदमी ही बड़े आदमी नहीं होते प्रभा की मां।"

"ना, बड़े आदमी तो तुम हो जो अपनी जोरू को रोटी-कपड़ा भी नहीं जुटा सकते ! फिर तुम्हें ऐसी ही किसी कहारिन-महरिन से ब्याह करना चाहिए था। तुम्हारे घर का धन्धा भी करती, इधर उधर चौका-बर्तन करके कुछ कमा भी लाती।"

मास्टर साहेब चुप हो गये। वे पत्नी से विवाद नहीं करना चाहते थे कुछ ठहरकर उन्होंने कहा—"जाने दो प्रभा की मां, आज झगड़ा मत करो।" वे थकित भाव से उठे, अपने हाथ से एक गिलास पानी उंडेला और पीकर चुपचाप कोट पहिनने लगे। वे जानते थे कि आज अब चाय नहीं मिलेगी - उन्हें ट्यूशन पर जाना था।

भामा ने कहा—"जल्दी आना, और ट्यूशन के रुपये भी लेते आना।"

मास्टर जी ने विवाद नही बढ़ाया। उन्होंने धीरे से कहा—अच्छा। "और घर से बाहर हो गये।

(२)

बहुत रात बीते जब वे घर लौटे तो घर में खूब चुहल हो रही थी। भामा की सखी-सहेलियां सजी-धजी, गा बजा रहीं थीं। अभी उनका खाना-पीना नहीं हुआ था। भामा ने बहुत सा सामान बाजार से मंगा लिया था—पूड़ियाँ तली जा रही थीं और घी की सौंधी महक घर में फैल रही थी।

पति के लौट आने पर भामा ने ध्यान नहीं दिया। वह अपनी सहेलियों की आवभगत में लगी रही। मास्टर साहेब बहुत देर तक अपने कमरे में पलंग पर लेटे भामा के आने

और भोजन कराने की प्रतीक्षा करते रहे, और न जाने कब सो गये।

३

"रात को भूखे सो रहे तुम, खाना नहीं खाया ?"

"कहां, तुम काम में लगी थीं, मुझे पड़ते ही जो नींद आई तो फिर आंख ही नहीं खुली।"

"मैं तो पहिले ही जानती थी कि बिना इस दासी के लाये तुम खा ही नहीं सकते। रोज ही तो चाकरी बजाती हूं, एक दिन मैं तनिक अपनी मिलनेवालियों में फँस गई, सो रूठ कर भूखे सो रहे। सो एक बार नहीं सौ बार सो रहो, यहां किसी की धौंस नहीं सहने वाले हैं।"

"लेकिन प्रभा की मां, इसमें धौंस की क्या बात है ? मुझे नींद आ ही गई।"

"आ गई तो अच्छा हुआ, अब महीने के खर्च का क्या होगा ?"

"ट्यूशन ही के बीस रुपये जेब में पड़े हैं, उन्ही में काम चलाना होगा।

"ट्यूशन के बीस रुपये ? वे तो रात काम में आ गये। मैंने ले लिए थे।"

"वे भी खर्च कर दिये ?"

"बड़ा कसूर किया, अब फांसी चढ़ा दो।"

"नहीं नहीं प्रभा की मां, मेरा ख़याल था कि चालीस रुपये में तुम काम चला लोगी, बीस बच रहेंगे। इनसे दबभिच कर महीना कट जायगा।"

"यह तो रोज का रोना है। तकदीर की बात है, यही घर मेरी फूटी तकदीर में लिखा था! पर क्या किया जाय, अपनी लाज तो ढकनी ही पड़ती है। लाख भूखे-नंगे हों, परायों के सामने तो नहीं रह सकते! ये सब बड़े घर की बहू-बेटियां थीं, कोई खटीक-चमाइन तो थीं ही नहीं। फिर साठ-पचास रुपये की औकात ही क्या?"

मास्टर साहेब चिन्ता से सिर खुजाने लगे। उन्हें कोई जवाब नहीं सूझा। महीने का खर्च चलेगा कैसे, यही चिन्ता उन्हें सता रही थी। अभी दूधवाला आएगा, धोबी आएगा, वे इस माह में जूता पहिनना चाहते थे—बिलकुल काम-लायक न रह गया था। परन्तु अब जूता तो एक ओर रहा, और आवश्यक खर्च की ही चिन्ता सवार हो गई।

पति को चुप देख भामा झटका देकर उठी। उसने कहा—"अब इस बार तो कसूर हो गया भई, पर अब किसी को नहीं बुलाऊंगी। इस अभागे घर में तो पेट के झोले को भर लिया जाय, तो ही बहुत है।"

उसने रात का बासी भोजन लाकर पति के सामने रख दिया। मास्टर साहेब चुपचाप खाकर स्कूल को चल दिये।

भामा ने कहा—"बिना कहे तो रहा नहीं जाता, अब तेली, तम्बोली, दूधवाला, धोबी आकर मेरी जान खाएंगे! क्या कहूँ उनसे बोलो तो? तुम्हें तो अपनी इज्जत का खयाल ही नहीं, पर मुझसे तो इन नीचों के तकाजे नहीं सहे जाते।"

मास्टर जी ने धीमे स्वर में नीची नज़र करके कहा—"करूंगा प्रबन्ध, जाता हूँ।"

(४)

"लेकिन, क्यों सहती हो बहिन; इन पुरुषों की प्रभुता का जुआ हमें अपने कन्धे से उतार फेंकना होगा, हमें स्वतन्त्र होना होगा, हम भी मनुष्य हैं—पुरुषों ही की भांति ! कोई कारण नहीं जो हम इनके लिये घर-गिरस्थी करें, उनके लिये बच्चे पैदा करें और जीवन भर उनकी गुलामी करती हुई मर जायं।"

भामा की आंखें चमकने लगीं। उसने कहा—"यही तो मैं भी सोचती हूँ श्रीमती जी। आप ही कहिये, चालीस रुपये की नौकरी, फिर दूध-धोये भी बने रहना चाहते हैं। आप ही कहिए, दुनिया के एक से एक बढ़ कर भोग हैं। क्या मनुष्य का दिल उन्हें भोगना न चाहेगा ?"

"क्यों नहीं, फिर वे भोग बने किसके लिये हैं ? मनुष्य ही तो उन्हें भोगने का अधिकार रखता है।"

"यही तो, पर पुरुष ही उन्हें भोग पाते हैं ! वे ही शायद मनुष्य हैं, हम स्त्रियाँ जैसे मनुष्यता से भी हीन हैं !"

"हमें लड़ना होगा, हमें संघर्ष करना होगा। हमें पुरुष की बराबरी की होकर ही जीना होगा। इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिये हमने यह आजाद महिला संघ खोला है। तुम्हें चाहिये कि इसमें सम्मिलित हो जाओ। इसमें हम न सिर्फ स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ते-पढ़ाते हैं, बल्कि स्त्रियों को स्वावलम्बी रहने योग्य भी बनाते हैं। हमारा एक स्कूल है, जिसमें सिलाई-क़सीदा और भांति-भांति की दस्तकारी सिखाई जाती है। गायन, नृत्य

के सीखने का भी प्रबन्ध है। हम जीवन चाहती हैं, सो हमारे संघ में तुम्हें भरपूर जीवन मिलेगा ,"

"तो मैं श्रीमती जी, आपके संघ और स्कूल दोनों ही की सदस्य होती हूँ" जब वे स्कूल चले जाते हैं, मैं दिन भर घर में पड़ी उनके आने का इन्तजार करती रहती हूं। सो भी इस आशा में नहीं कि मेरे लिये कुछ उपहार लेकर आते होंगे या मेरे पास बैठ कर दो बोल हँस बोलेंगे ! ईश्वर-जाने कैसी ठण्डी तबियत पाई है, चुपचाप आते हैं, थके हुये, परेशान से, और पूरे सुस्ता भी नहीं पाते, कि ट्यूशन। प्रभा है, उनकी लड़की, उसी से रात को हसते-बोलते हैं। कहिये यह कोई जीवन है ? नर्क नर्क, सिर्फ मैं हूँ जो यह सब सहती हूँ !"

"मत सहो, मत सहो बहिन, अपने आत्म-सम्मान और स्वाधीनता की रक्षा करो।"

"यही करूंगी श्रीमती जी, यही करूंगी।"

"तो कल आना। हमारा वार्षिकोत्सव है, बहुत सी बड़ी बड़ी देवियां आवेंगी—उनके भाषण होंगे, भजन होंगे, नृत्य होगा, गायन होगा, नाटक होगा, प्रस्ताव होंगे और फिर प्रीति-भोज होगा। कहा आओगी न।"

"अवश्य आऊंगी , अब जाती हूँ।"

"अब जाओ फिर। तुम्हें देखकर चित्त प्रसन्न हुआ। याद रखो तुम्हारी जैसी ही देवियों के पैरों में पड़ी परतन्त्रता की बेड़ियां काटने के लिये हमने यह उद्योग किया है -"

"आप धन्य हैं श्रीमती जी, नमस्ते।"

"नमस्ते !"

(५)

भामा ने बड़ी ही उत्सुकता से वह रात काटी और अपनी समझ में पूरी तैयारी के साथ सज-धज कर जब उस जलसे में गई तो हद दर्जे चमत्कृत और लज्जित होकर लौटी। चमत्कृत हुई वहाँ के वातावरण से व्याख्यान से, कविताओं और नृत्य से, मनोरंजन-प्रकारों से। उसने देखा, समझा—अहा, यही तो सच्चा जीवन है, कैसा आनन्द है, कैसा उल्लास है, कैसा विनोद है! परन्तु जब उसने अपनी हीनावस्था का वहां आने वाली प्रत्येक महिला से मुकाबिला किया तो लज्जित हुई उसने दरिद्र, निरीह पति से लेकर घर की प्रत्येक वस्तु को, यहां तक कि अपने आप तक को अत्यन्त नगण्य, अत्यन्त क्षुद्र, अत्यन्त दयनीय समझा, और वह अपने ही जीवन के प्रति एक असहनीय विद्रोह और असन्तोष-भावना लिये बहुत रात गए घर लौटी।

मास्टर साहेब उसकी प्रतीक्षा में जागे बैठे थे। प्रभा पिता की कहानियां सुनते सुनते थक कर सो गई थी। भोजन तैयार कर आप खा और प्रभा को खिला, पत्नी के लिये उन्होंने रख छोड़ा था।

भामा ने आते ही एक तिरस्कार भरी दृष्टि पति और उस शयनागार पर डाली—जो उसके कुछ क्षण पूर्व देखे हुए दृश्यों से चकाचौंध हो गई थी। उसे सब कुछ बड़ा ही अशुभ, असहनीय प्रतीत हुआ। वह बिना ही भोजन किये, बिना ही पति से एक शब्द कहे, बिना ही सोती हुई फूल सी प्रभा पर एक दृष्टि डाले चुपचाप जाकर सो गई।

मास्टर साहेब ने कहा—"और खाना ?"

"नहीं खाऊंगी।"

"कहां खाया ?"

"खा लिया।"

और प्रश्न नहीं किया। मास्टर साहेब भी सो गए।

(६)

भामा प्रायः नित्य ही महिला संघ में जाने लगी। उन्मुक्त वायु में स्वच्छन्द सांस लेने लगी, पढ़ी-लिखी, उन्नतिशील कहाने वाली लेडियों, महिलाओं के सम्पर्क में आई, जितना पढ़ सकती थी, पुस्तकों, पत्रिकाओं को भी पढ़ने लगी। उसने सुना—उन महामहिम महिलाओं में, जो सभाओं और जल्सों में ठाठदार साड़ी धारण करके सभानेत्रियों के आसन को सुशोभित करती हैं, चारों ओर स्त्री-पुरुष जिनका आदर करते, जिन्हें प्रणाम करते, हँस हँस कर झुककर जिनका सम्मान करते हैं, उनमें कोई घर को त्याग चुकी है, कोई पति को त्याग चुकी है, उनका गृहस्थ जीवन नष्ट हो चुका है, वे स्वच्छन्द हैं, उन्मुक्त हैं, बाधा-हीन हैं। वे कुछ घण्टों ही के लिये नहीं, प्रत्युत दिनों और महीनों तक जहां चाहे रह और जहां चाहे जा सकती हैं, उन्हें कोई रोकने वाला, उनकी इच्छा में बाधा डालने वाला नहीं है! उसे लगा, यही तो स्त्री का सच्चा जीवन है। ये गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ चुकी हैं। ये धन्य हैं।

एक दिन एक सभा में जब सभानेत्री महोदया, तालियों की प्रचण्ड गड़गड़ाहट में ऊंची कुर्सी पर बैठीं—उपस्थित प्रमुख पुरुषों और महिलाओं ने उन्हें सादर मोटर से उतार कर फूल-

मालाओं से लाद दिया था—तो भामा के पास बैठी एक महिला ने मुंह बिचका कर कहा—"लानत है इस पर, यहां ये ठाठ हैं और वहां खसम ने पीट कर निकाल दिया है! अब मुकदमे-बाजी चल रही है।"

दूसरी देवी ने कुतूहल से पूछा—"क्यों ? क्यों ? ऐसा क्यों है ?"

"कौन अपनी औरत का रात-दिन पराए मर्दों के साथ घूमते रहना, हँस हँस कर बातें करना पसन्द करेगा भला ? घर-गिरस्ती देखना नहीं"—देशोद्धार करना या महिलोद्धार करना! और घर-बाहर आवारा फिरना!"

"तो फिर बीबी, बिना त्याग किए यों देश-सेवा हो भी नहीं सकती!"

"खाक देश-सेवा! जो अपने पति और बाल बच्चों की सेवा नहीं कर सकती, अपनी घर-गिरस्ती को नहीं सम्हाल सकती वह देश-सेवा क्या करेगी ? देश के शान्त जीवन में अशान्ति की आग अवश्य लगाएगी।"

भामा को ये बातें चुभ रही थीं। उससे न रहा गया, उसने तीखी हो कर कहा—क्या चकचक लगाए हो बहिन, घर-गिरस्ती जा कर सम्हालो न, यहां वक्त बरबाद करने क्यों आई हो ?"

महिला चुप तो हो गई। पर उसने तिरस्कार और अवज्ञा की दृष्टि से एक बार भामा को और एक बार सभानेत्री को देखा।

भामा सिर्फ स्त्रियों ही के जल्सों में नहीं जाती-आती थी; वह उन जल्सों में भी भाग लेने लगी जिनमें पुरुष भी होते।

बहुधा वह स्वयंसेविका बनती, और ऐसे कार्यों में तत्परता दिखा कर वाहवाही लूटती। उसकी लगन, तत्परता, स्त्री-स्वातन्त्र्य की तीव्र भावना के कारण इस जाग्रत स्त्री-जगत् में उसका परिचय काफी बढ़ गया, वह अधिक विख्यात हो गई। लीडर स्त्रियों ने उसे काम की समझा, उसका आदर बढ़ा। भामा इससे और भी प्रभावित होकर इस सार्वजनिक जीवन में आगे बढ़ती गई। अब उसकी वह क्षुद्र, दरिद्र गिरस्ती, छोटी सी पुत्री और समाज में अतिसाधारण सा अध्यापक उसका वह पति, सब कुछ हेय हो गया।

वह बहुत कम घर पर रहती। बहुधा मास्टर साहेब को खाना स्वयं बनाना पड़ता, चाय बनाना तो उनका नित्यकर्म हो गया। पुत्री प्रभा की सार-सम्हार भी उन्हें करनी पड़ने लगी। वे स्कूल जायें, ट्यूशन करें, बच्ची को संभालें, भोजन बनावें और घर को भी संभालें, इतना सब नित्य नित्य सम्भव नहीं रहा।

घर में अव्यवस्था और अभाव बढ़ गया। भामा और भी तीखी और निडर हो गई। वह पति पर इतना भार डाल कर, उनकी यत्किंचित् भी सहायता न करके, उनकी सारी सम्पत्ति को अधिकृत करके भी निरन्तर उनसे क्रुद्ध और असंतुष्ट रहने लगी। पति की क्षुद्र आय का अब सबसे बड़ा भाग उसकी साड़ियों में, चन्दों में, तांगे के भाड़े में और मित्र-मित्राओं के चाय-पानी में खर्च होने लगा। मास्टर साहेब को मित्रों से कर्ज लेना पड़ा। वह कर्ज मास-मास बढ़ने लगा और फिर भी खर्च की व्यवस्था बनी नहीं। दूध आना बन्द हो गया, घी की

मात्रा कम हो गई, साग-सब्जी में किफायत होने लगी। मास्टर जी के कपड़े फट गए, उन्होंने और एक ट्यूशन कर ली। वे रात-दिन पिसने लगे। छोटी सी बच्ची चुपचाप अकेली घर में बैठी पिता और माता के आगमन की घण्टों प्रतीक्षा करने की अभ्यस्त हो गई। बहुधा वह बहुत रात तक, सन्नाटे के आलम में, अकेली घर में डरी हुई, सहमी हुई बैठी रहती—कभी रोती, कभी सो। जाती बहुधा भूखी प्यासी।

७

एक दिन जब मास्टर स्कूल की तैयारी में थे, भामा ने कहा—"सुनते हो, मुझे एक नई खद्दर की साड़ी चाहिये और कुछ रुपये। महिला संघ का जलसा है, मैंने स्वयं-सेविकाओं में नाम लिखाया है।"

"किन्तु रुपये तो अभी नहीं हैं, साड़ी भी आना मुश्किल है, अगले महीने में..."

भामा गरज पड़ी—"अगले महीने में, या अगले साल में...आखिर क्या मैं भिखारिन हूँ? मैं भी इस घर की मालकिन हूं। ब्याही आई हूं। बाँदी नहीं।"

"सो तो ठीक है प्रभा की मां, परन्तु रुपया तो नहीं है न! इधर बहुत सा कर्जा भी तो हो गया है तुम तो जानती ही हो......"

"मुझे तुम्हारे कर्जों से क्या मतलब? कमाना मर्दों का काम है या औरतों का? कहो, तो मैं कमाई करूं जाकर?"

"नहीं नहीं, यह मेरा मतलब नहीं। पर अपनी जितनी आमदनी है उतनी......"

"भाड़ में जाय तुम्हारी आमदनी। मुझे साड़ी चाहिये और दस रुपये।"

"तो बन्दोबस्त करूंगा।" मास्टर साहेब और नहीं बोले, छाता सम्हाल कर चुपचाप चल दिये।

❀ ❀ ❀

जल्से में भामा एक सप्ताह व्यस्त रही। वह घर न आ सकी। आठ दिन बाद जब वह आई तो उसके रंग-ढंग बदले हुए थे। उसमें लीडरी की बू आ गई थी। अब वह एक बच्ची की मां, एक पति की पत्नी, एक घर की गृहणी नहीं—एक आधुनिकतम महिला-उद्धारक स्त्री थी! पुरुषों से, गृहस्थी की रूढ़ियों से, दरिद्र जीवन से सम्पूर्ण विद्रोह करने वाली। वह बात-बात पर पति से झगड़ा करने लगी, प्रभा को अकारण ही पीटने लगी! तनिक सी भी बात मन के विपरीत होने पर तिनक कर घर से चली जाती और दो दो दिन ग़ायब रहती। उसकी बहुत सी सखी सहेलियाँ हो गई थीं, बहुत से अड्डे बन गये थे, जिनमें स्कूलों की मास्टरनियाँ, अध्यापिकाएं, विधवाएं, प्रौढ़ायें और स्वतंत्र जीवन का रस लेने वाली अन्य अनेक प्रकार की स्त्रियां थीं। उनमें से प्रायः सबों ने स्त्रियोंके उद्धार का व्रत ले रखा था।

इन सब बातों से अन्ततः एक दिन मास्टर साहेब का समुद्र सा गम्भीर हृदय भी विचलित हो गया। पत्नी के प्रति उत्पन्न रोष को वे यत्न करके भी न दबा सके। प्रभा दो दिन से ज्वर में बेहोश थी, और भामा दो दिन से गायब थी—किसी कार्य-वश नहीं, क्रुद्ध होकर। प्रभा ने अम्मा-अम्मा की रट लगा रखी थी! उसके होठ सूख रहे थे। बदन तप रहा था। मास्टर साहेब स्कूल नहीं जा सके थे। ट्यूशन भी नहीं।' खाना

भी नहीं। वे पुत्री के पास बैठे, पानी से उसके होठों को तर करते, 'अम्मा आ रही हैं, कह कर धीरज देते, फिर एक गहरी साँस के साथ हृदय के दुःख को बाहर फेंकते और अपने दाँतों से होठ दबा कर भामा के प्रति उत्पन्न क्रोध को काबू में रखने की चेष्टा करते।

भामा आई तो उसने न रुग्ण पुत्री की ओर देखा, न भूख-प्यास से जर्जर चिंतित पति को। वह भरी हुई जाकर अपनी कोठरी में द्वार बन्द करके पड़ गई।

अन्त में मास्टर साहेब ने कोठरी के द्वार पर जाकर कहा—प्रभा को बहुत तेज बुखार है प्रभा की मां, तनिक आओ तो!

"मैं क्या वैद्य डाक्टर हूँ?" भीतर से भामा ने कहा।

"नहीं, वह तुम्हें बहुत याद कर रही है, तनिक उसके पास बैठो।"

"तुम बैठे तो हो!"

"वह तुम्हें पुकार रही है, आओ!"

"मैं थक रही हूँ—मेरी जान मत खाओ।"

"कैसी बात करती हो प्रभा की मां, वह तुम्हारी बेटी है।"

"तुम्हारी भी तो है!"

"बच्चों की देखभाल तो मां ही कर सकती है' प्रभा की मां!"

"पर बच्चे माँ के नहीं, बाप के हैं, उन्हें ही उनकी सम्हाल करनी चाहिये।"

"यह तुम क्या कह रही हो, प्रभा की मां?"

"तुम उसे समझ नहीं सकोगे। स्कूल की किताबों में वह बात नहीं लिखी है।"

"पर तुम ज़रा बच्ची से पास तो आओ।"

"भाड़ में जाय बच्ची, मुझे ज़रा सोने दो, मेरी तबियत ठीक नहीं है।"

मास्टर साहेब के शरीर का सम्पूर्ण रक्त उनके मस्तिष्क में भर गया। जीवन में पहिली बार असह्य क्रोध की लहर आई। उन्होंने आपे से बाहर होकर, किन्तु धीर स्वर में कहा—"तुम ऐसी हृदयहीन हो, प्रभा की माँ, ?" उन्होंने थूक सटका और चले गये।

❀ ❀ ❀

सुबह बड़ी देर तक भी जब भामा अपनी कोठरी से बाहर नहीं आई तब मास्टर साहेब, रात भर की जागी फूली हुई सुर्ख आंखों की कोर में वेदना और उदासी भरे, प्रभात की बेला में झपकी लेती क्लान्त बच्ची को चुपके से छोड़ कर फिर पत्नी की कोठरी में गये। रात के गुस्से को भूलकर उन्होंने पुकारा—"प्रभा की मां, उठो तो तनिक, दिन बहुत चढ़ गया है।"

पर दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा, कोठरी का द्वार खुला है और भामा वहां नहीं है, कोठरी सूनी है, बिछौना खाली है। भीतर जाकर देखा, एक पुर्जा लिखा रखा था। उसमें लिखा था—

"मेरी आंखें खुल गई हैं, मैं अपने अधिकार को जान गई हूं। मैं भी आदमी हूँ, जैसे तुम मर्द लोग हो। और मुझे भी मर्दों की भांति स्वतन्त्र रहने का अधिकार है। मैं तुम्हारे लिये गृहस्थी

की गुलामी करने से इन्कार करती हूँ। तुम्हारे लिये बच्चे पैदा करने, उनके मल-मूत्र उठाने, तुम्हारे सामने हाथ पसारने से इन्कार करती हूँ। मैं जाती हूँ और कहे जाती हूँ कि तुम्हें मुझे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बाँध रखने का कोई अधिकार नहीं। तुम्हारी चालीस रुपये की हैसियत में मैं अपने को भागीदार नहीं बना सकती।"

मास्टर साहब की आँखें फट गईं, मुंह फैल गया। वे वहीं चारपाई पर बैठ कर दो तीन बार उस पत्र को पढ़ गये। और सब बातों को भूल कर वे यही सोचने लगे—आखिर भामा यह सब लिख कैसे सकी! बिल्कुल ग्रामोफ़ोन की सी भाषा, व्याख्यान के नपे-तुले शब्द, साफ तीखी युक्ति, सुगठित भाषा। ऐसा तो वे भी नहीं लिख सकते! भामा यह सब कहां से सीख गई? क्या उसने सत्य ही उन सब गम्भीर बातों पर, स्त्री-स्वातन्त्र्य पर, सामाजिक जीवन के इस असाधारण स्त्री-विद्रोह पर पूरा-पूरा विचार कर लिया है? क्या वह जानती है कि इस मार्ग पर जाने से उस पर क्या क्या जिम्मेदारियां आवेंगी? मैं तो उसे जानता हूँ, वह कमजोर दिमाग की स्त्री है, एक असहनशील पत्नी है, एक निर्मम मां है। वह इन सब बातों को समझ ही नहीं सकती! परन्तु वह यह खत लिख कैसे सकी? घर त्यागने का साहस उसमें हो सकता है, यह उसकी दिमागी कमजोरी और असहनशील हृदय का परिणाम है, परन्तु उसके कारण इतने उच्च, इतने विशाल, इतने क्रान्तिमय हैं, यह भामा समझ नहीं सकती। वह सिर्फ भरी गई है, भुलावे में आई है। ईश्वर करे उसे सुबुद्धि प्राप्त हो, वह लौट आवे—मेरे पास नहीं, मैं जानता

हूँ मैं अच्छा पति नहीं। मैं उसकी अभिलाषाओं की पूर्ति नहीं कर सकता, मेरी क्षुद्र आमदनी उसके लिये काफी नहीं है। फिर भी, प्रभा के लिये लौट ही आना चाहिये उसे। पता नहीं कहां गई, पर उसे ढूंढना होगा। उसके गुस्से को इतना सहा है, और भी सहना होगा। और उसने समझा हो या न समझा हो, उसका यह कहना तो सही ही है कि मुझे उसे बलपूर्वक अपने दुर्भाग्य से बांध रखने का कोई अधिकार ही नहीं है।

क्षण भर मास्टर साहेब स्तब्ध बैठे रहे। उनकी तनुख्वाह के गोल गोल चालीस रुपये झल-झल करके उनके कानों में चालीस तक की गिनती गिन कर गुम-सुम होने लगे और उनकी दरिद्रता, असहाय गृहस्थी विद्रूप कर ही-ही करके उनका उप-हास करने लगी।

८

"मैं आज उन गुलामी की बेड़ियों को तोड़ आई हूं श्रीमती जी!"

"शाबाश, तुम्हारे साहस की जितनी तारीफ़ की जाय थोड़ी है। मैं समझती हूँ कि अब तुम अधिक आज़ादी से अपनी बहनों और अपने देश की सेवा कर सकती हो।"

"आप जो कहें, वही मैं करूंगी।"

"मैं चाहती हूं अभी तुम हमारे स्कूल में काम करो। सिर्फ सामान की फ़िहरिस्त रखना, चीज़ों को सम्हालना और तैयार माल को बाजार में बेचना—यही काम तुम्हें करना होगा।"

"और सब तो ठीक है, पर बाजार में बेचना, यह मुझसे कैसे होगा?" मैं तो कभी बाजार जाती नहीं, लोगों से बात करती नहीं।

"तो क्या मैं समझूं, यह भीरुता, यह कमजोरी तुममें अभी बनी ही रहेगी ?"

"पर श्रीमती जी..."

"वह कुछ नहीं। हरिया तुम्हारे साथ रहेगा। वह बाजार के कामों में खूब चंट है। सिर्फ हथलपक है, जो माल बेचता खरीदता है, अपनी मुट्ठी भी गर्म करता है। अब तुम्हारी निगरानी में वह ऐसा नहीं कर सकेगा।"

"पर मैं काम कुछ जानती नहीं हूं श्रीमती जी, कहीं कोई भूल चूक हो गई तो..."

"तो क्या हुआ, भूल-चूक भी इन्सान से ही होती है। फिर सब काम करने ही से तो आते हैं, कोई पेट से तो सब सीख कर पैदा नहीं होता।"

"तब ठीक है, श्रीमती जी, अब मेरे खाने पीने का क्या होगा ?"

"तुम्हें बीस रुपया माहवार मिलेगा। रहने को मकान स्कूल में ही मिलेगा। काम सीख लेने पर और कुछ, और पढ़-लिख जाने पर और ज्यादा तनखाह मिलेगी।"

(६)

भामा जब अपने नये घर में आई तो उसका मन बैठ रहा था। उसका सारा उत्साह ठण्डा पड़ रहा था। बीस रुपये की नौकरी, दिन भर की गुलामी, फिर बाजार में माल बेचना ! छी छी, मैं कैसे उन लोगों से पार पाऊंगी।

घर को उसने देखा—उसके अपने घर की एक कोठरी से भी बदतर था। एक साधारण सी कोठरी, गन्दी और सूनी।

बराबर की कोठरी में चपरासी हरिया रहता था। उसकी पीकर फेंकी हुई अध-जली बीड़ियां बिखरी पड़ी थीं। झाड़ू महीनों से नहीं लगी थी। एक टूटी खाट और पुराना घड़ा, पानी से भरा एक कोने में रखा था।

यह देख कर उसे अपना घर, गरीब पर साफ-सुथरा, छोटी सी बिटिया प्रभा, और सदा शान्त शिष्ट रहने वाले पति याद आने लगे। पर उसने दृढ़तापूर्वक आगे कदम बढ़ाने की ठान ली। कोठरी उसने झाड़-बुहार कर ठीक कर ली। हरिया से उसने कहा—

"लेकिन चारपाई बिछौना, सामान? मेरे पास तो कुछ नहीं है।"

"आज-भर मेरी चारपाई ले लो, पैसे हों तो दो मैं सामान ला दूं। कल बन्दोबस्त कर लेना।"

"लेकिन मेरे पास पैसे भी तो नहीं हैं।"

"तो तुमने बड़ी बीबी से मांगा क्यों नहीं?"

भामा को उस नीच चपरासी का तुम तुम करके बातें करना बहुत बुरा लगा—उसकी चारपाई मगनी लेना, उसी के बगल की सूनी कोठरी में अकेली रहना, और बिना साज-सामान गृहस्थी बसाना! उसे यह सब एक असह्य, अनहोनी सी बात लगने लगी।

उसने सोचा। चलो, घर लौट चलूं, पर मन फिर मचल गया। उसने 'तुम' कह कर उससे बात करने वाले हरिया से 'तू' कहकर बात की। कहा—"चल ज़रा मेरे साथ, बीबीजी के

घर, मैं उनसे जरूरी सामान का बन्दोबस्त करने को कहूं।"

हरिया को यह तू-तड़ाक पसंद नहीं आई। उसने धृष्टता से कहा—"मैं स्कूल का नौकर हूं तुम्हारा नहीं, और रात दिन की नौकरी भी नहीं करता। मैं इस वक्त कहीं नहीं आ जा सकता।" वह भीतर अपनी कोठरी में चला गया।

मानिनी भामा तमाम रात भूखी प्यासी, ठिठुरती उस कोठरी के कोने में भीतर से द्वार बन्द करके बैठी रही। एक एक करके उसके सामने पति के प्यार, सहिष्णुता, आधीनता के चित्र खिंचने लगे। उसे ख्याल हुआ, इनकी यह दरिद्रता इनकी अकर्मण्यता से नहीं है; देश के वातावरण से, लाचारी से और परंपरा से है। उसे रह रह कर अपनी बच्ची की याद आ रही थी, जो ज्वर में अपने सूखे होंठो से अम्मा को पुकार रही थी। उसे पति के अभ्यस्त मधुरतम सम्बोधन, 'प्रभा की मां', की याद आ रही थी। झर-झर उसकी आँखों से आँसू बहते रहे, वह रोती रही, भूख-प्यास से थकित, शिथिल, गन्दी अंधेरी कोठरी में बैठी वह मन ही मन कहने लगी—"यही हमारी, हम स्त्रियों की, स्वाधीनता का पथ है।"

दूसरी कोठरी में हरिया और उसके यार-दोस्त चण्डू के दम लगा रहे थे, गन्दी बातें बक रहे थे, और बीच बीच में भामा को लेकर बहुत सी उचित-अनुचित बातें बक रहे थे।

(१०)

"किन्तु श्रीमती जी, भामा मेरी पत्नी है!"

"कह तो दिया। आप नहीं मिल सकते।"

"मगर मिलना बहुत जरूरी है श्रीमती, उसकी बच्ची बहुत बीमार है।"

"महाशय, वह आप से मिलना नहीं चाहतीं, आपसे कोई सरोकार रखना नहीं चाहतीं। ऐसी हालत में आप जबर्दस्ती उनसे नहीं मिल सकते!"

"जबर्दस्ती नहीं श्रीमती जी, मैं आप से प्रार्थना करता हूँ..."

"आप नाहक हमारा सिर खाते हैं।"

"लेकिन उसने उचित नहीं किया है, उसे सोचना होगा। और आप को भी उसे समझाना चाहिये। सोचिये तो सही वह एक पति की पत्नी ही नहीं, एक बच्ची की मां भी है।"

"वह अपना हानि-लाभ सोच सकती हैं, उन्हें आपकी शिक्षा की आवश्यकता नहीं।"

"है श्रीमती जी, है। उसे मेरी शिक्षा की, सहायता की बहुत जरूरत है। वह अपनी लाभ-हानि नहीं सोच सकती।"

"तो आप चाहते क्या हैं?"

"जरा उसे यहां बुलाइये, मैं उससे बात करना चाहता हूं।"

"परन्तु मैंने कह तो दिया, वह आपसे बात करना नहीं चाहतीं।"

"नहीं नहीं, बात करने में हानि नहीं है।"

"ओफ, आपने तो सिर खा डाला! मैं कहती हूं आप चले जाइये।"

"मैं उसे ले जाने के लिये आया हूं।"

"उन्हें आप जबर्दस्ती नहीं ले जा सकते।"

"मैं उसे समझाना चाहता हूं।"

"वह आपसे मिलने को तैयार नहीं है।"

"मैं उसका पति हूं श्रीमती जी, वह मेरी पत्नी है, मेरा उस पर अधिकार है।"

"तो आप अदालत में जाइये। अपने अधिकार का दावा कीजिये।"

"छी-छी श्रीमती जी, आप महिलाओं की हितैषिका हैं, आप यह कभी नहीं पसन्द करेंगी..."

"जी, मैं यह भी तो नहीं पसन्द करती कि पुरुष स्त्रियों को उनकी इच्छा के विपरीत अपनी आवश्यकताओं का गुलाम बनाएं!"

"कहां, हम तो उन्हें अपने घरबार की मालकिन बना कर अपनी इज्जत, प्रतिष्ठा सब कुछ उन्हें सौंप कर निश्चिन्त रहते हैं! जो कमाते हैं उन्हीं के हाथ पर ला धरते हैं, फिर प्रत्येक वस्तु और कार्य के लिये उन्हीं की सहायता के भिखारी रहते हैं।"

"विचित्र उलझन के व्यक्ति हैं आप, अब मुझी से उलझ रहे हैं? तो आप यह व्याख्यान किसी पत्र में छपवा दीजियेगा। आपकी युक्तियों का मेरे लिये कोई मूल्य नहीं है।"

"किन्तु श्रीमती जी, आप एक पति और उसकी पत्नी के बीच में इस प्रकार का व्यवधान मत बनिये।"

"अच्छा तो आप मुझे धमकाना चाहते हैं।"

"मैं आपसे प्रार्थना करता हूं, विनय करता हूं, आप भद्र महिला हैं। एक माता को उसकी रुग्णा पुत्री से, उसके निरीह

पति से पृथक मत कीजिये। आप बड़े घर की महिलाएं, और आपके पतिगण, यह सब विच्छेद सहन कर सकने की शक्ति रखते हैं, हम गरीब अध्यापक नहीं। हमारी छोटी सी गरीब दुनिया है, शान्त छोटा सा घर है, एक छोटी चिड़िया के घोंसले के समान। हम लोग न ऊधो के लेने में न माधो के देने में। दिन भर मिहनत करते हैं—घर में पत्नी और बाहर पति—और रात को अपनी नींद सोते हैं। आप बड़े बड़े आदमियों का शिकारी जीवन है, उसमें संघर्ष हैं, आकांक्षायें हैं, प्रतिक्रिया है, और प्रतिस्पर्धा है। इन सब के बीच आप लोगों का व्यक्तिगत जीवन एक गौण वस्तु बन जाता है। पर हम लोग इन सब झंझटों से पाक-साफ हैं। कृपया हम जैसे निरीह प्राणियों को अपनी इस जीवन की घुड़दौड़ में न घसीटिये, दया कीजिए, मेरी पत्नी मेरे साथ कर दीजिये, मैं उसे समझा लूंगा, उससे निपट लूंगा।"

"अच्छा, तो आप चाहते हैं कि मैं चपरासी को बुलाऊं या पुलिस को फोन करूं!"

"जी नहीं, मैं चाहता हूं कि आप भामादेवी को यहां बुला दें, मैं उन्हें घर ले जाऊं।"

"यह नहीं हो सकता।"

"यह बड़ा अन्याय है श्रीमती जी।"

"आप जाते हैं, या चपरासी बुलाया जाय?"

"चपरासी......?"

"ओ चपरासी!"

देवी जी ने उच्च स्वर से पुकारा। अपनी टेढ़ी और घिनौनी मूँछों में हंसता हुआ हरिया आ खड़ा हुआ। अर्ध-उद्दण्डता से बोला—

"क्या करना होगा मेम साहेब ?"

मेम साहेब के कुछ कहने से प्रथम ही मास्टर साहेब "कुछ नहीं भाई, कुछ नहीं", कहते हुए, अपना छाता उठा आफिस से बाहर हो गये। चलती बार वे श्रीमती जी को नमस्ते करना भूले नहीं।

(११)

"सुना तुमने, वह खूसट आया था, दफ्तर में।"

"कौन ?"

"अरे वही बागड़बिल्ला मास्टर, तुम्हारा पति।"

"लेकिन तू तमीज़ से बातें कर।"

"बेखुश, तुमसे ? क्या तुम मेरी अफसर हो ?"

"तो तूने समझा क्या है ?"

"तुम बीस पाती हो, मैं भी बीस पाता हूँ। तुम से कम नहीं।"

"तो इसी से तू मेरी बराबरी करेगा ?"

"कल इतना काम कर दिया, सारा सामान बाज़ार से ढोकर लाया और अब तू-तू करके बातें करती हो ? ऐसी ही शाहज़ादी थीं तो बीस रुपल्ली पर नौकरी करने और इस कोठरी में दिन काटने क्यों आई थीं ?"

"देख हरिया, ज़्यादा बदतमीज़ी करेगा तो अच्छा नहीं होगा।"

"क्या मारोगी ? मारोगी ?"

"मैं कहती हूं, तू अपनी हैसियत में रह।"

"और तुम भी अपनी हैसियत में रहो। बहुत सहा, कल मैं मेम साहेब से साफ कह दूंगा कि जिस-तिस की गुलामी करना मेरा काम नहीं है। ऐसी तीन सौ साठ नौकरी मिल सकती हैं। कुछ तुम्हारी तरह घर छोड़ कर भगोड़ा नहीं हूं! इज्जत रखता हूं।"

भामा का सारा ही मान बिखर गया। ओह, अभी सिर्फ दो ही दिन बीते हैं! इसी बीच में इतना कष्ट, इतना अपमान, इतनी वेदना, इतना सूनापन? हे ईश्वर, क्या अभी भी मैं अपने घर लौट नहीं सकती? क्या वे मुझे माफ नहीं कर सकते? अरे, मैं कितना उनसे तीखी रहती थी, कभी सीधे-मुंह बोली भी नहीं, सेवा तो एक ओर रही। आज दो-दो कौड़ी के नीच आदमी मेरे मुंह लगते हैं! मैं एक गरीब मास्टर की बीवी हूं, सही। फिर भी एक इज्जतदार औरत तो हूं। किसी का दिया तो नहीं खाती!

वे स्वयं लेने आये थे कितना घबरा रहे होंगे। प्रभा की क्या हालत होगी? हाय मैं उसे, पेट की बच्ची को, बुखार में तड़पती छोड़ आई, एक बार देखा भी नहीं। सच तो यह है कि मैंने न कभी अपने पति का खयाल किया, न सन्तान का। मैं सदा अपने में असन्तुष्ट रही। अपने को नहीं देखा, अपने ही देखती रही।

वह उस नीच कमीने नौकर से मुंहजोरी करना रोक अपनी कोठरी में घुस गई। द्वार भीतर से बन्द कर लिये और फूट फूट कर रोने लगी।

(१२)

दिन बीते, रातें बीतीं, सप्ताह बीते।

महीने और साल बीते। तीन साल बीत गये।

एक दिन, दिवाली की रात को, मास्टर साहेब अपने घर में दीये जला, प्रभा को खिला-पिला, बहुत सी वेदना, बहुत सी व्यथा हृदय में भरे बैठे थे। बालिका कह रही थी-"बाबूजी, अम्मा कब आयेंगी?

"आयेगी बेटी, आयेगी।"

"तुम तो रोज यही कहते हो! तुम झूठ बोलते हो बाबू जी।"

"झूठ नहीं बेटी आयेगी।"

"तो वह मुझे छोड़ कर चली क्यों गई?"

"यों ही बेटी, आ जायेगी।"

"आज दिवाली है बाबूजी।"

"हां बेटी।"

"तुमने कितनी चीजें बनाई थीं—पूरी,-कचौरी,-रायता,-हलुआ·········"

"हां हां बेटी, तुझे सब अच्छा लगा?"

"हां बाबूजी, तुम कितनी खील लाये हो, खिलौने लाये हो—मैंने सब यहां सजाये हैं।"

"बड़ी अच्छी बिटिया है तू रानी।"

"यह सब मैं अम्मा को दिखाऊंगी।"

"दिखाना।"

"देख कर वे हंसेंगी।"

"खूब हंसेंगी।"

"फिर मैं रूंठ जाऊंगी।"

"नहीं नहीं, रानी बिटिया नहीं रूंटा करती।"

"तो वह मुझे छोड़ कर चली क्यों गई ?"

"यों ही चली गई बेटी।"

मास्टर जी ने टप से एक बूंद आँसू गिराया और पुत्री की दृष्टि से बचा कर दूसरा पोंछ डाला। इसी समय बाहर खिड़की के पास किसी के धम से गिरने की आवाज़ आई।

मास्टर जी ने चौंक कर देखा, गुनगुना कर कहा—"क्या गिरा ? क्या हुआ ?

वे उठ कर बाहर गये। सड़क पर दूर खम्भे पर टिम-टिमाती लालटेन के प्रकाश में देखा, कोई काली काली चीज खिड़की के पास पड़ी है। पास जाकर देखा, कोई स्त्री है। निकट से देखा बेहोश है। मुंह पर लालटेन का प्रकाश डाला, मालूम हुआ भामा है।

मास्टर साहेब एकदम व्यस्त हो उठे। उन्होंने सहायता के लिये इधर-उधर देखा—कोई न था, सन्नाटा था, उन्होंने दोनों बांहों में भामा को उठाया और घर के भीतर ले गये। उसे चारपाई पर लिटा दिया।

बालिका ने भय-मिश्रित दृष्टि से मूर्छिता माता को देखा—कुछ समझ न सकी। उसने पिता की तरफ देखा।

"तेरी अम्मा आ गई बिटिया, बीमार है यह।" फिर भामा की नाक पर हाथ रख कर देखा और कहा—"उस कोने में

दूध रखा है ! ला तो जरा।" दूध के दो चार चम्मच कण्ठ में उतरने पर भामा ने आंखें खोलीं। एक बार उसने आंखें फाड़ कर घर को देखा, पति को देखा, पुत्री को देखा और वह चीख मार कर फिर बेहोश हो गई।

मास्टर जी ने नब्ज देखी, कम्बल उसके ऊपर डाला। ध्यान से देखा—शरीर सूख कर कांटा हो गया है, चेहरे पर लाल-काले बड़े बड़े दाग पड़ गये हैं, आंखें गढ़े में धंस गई हैं, सामने के दो दाँत टूट गये हैं, आधे बाल सफेद हो गये हैं। कपड़े गन्दे, चिथड़े। पैर कीचड़ और गन्दगी में लथपथ ! और··· और···और···वे दोनों हाथों से माथा पकड़ कर बैठ गये।

प्रभा ने भयभीत होकर कहा—क्या हुआ बाबूजी ?

"कुछ नहीं बिटिया, उन्होंने एक गहरी सांस ली। भामा को अच्छी तरह कम्बल उढ़ा दिया।

इसी बीच भामा ने फिर आँखें खोलीं। होश में आते ही वह उठने लगी। मास्टर जी ने बाधा देकर कहा—"उठो मत, उठो मत प्रभा की माँ, बहुत कमजोर हो। क्या थोड़ा दूध दूं ?"

भामा जोर-जोर से रोने लगी। रोते रोते हिचकियाँ बंध गईं।

मास्टर जी ने घबड़ा कर कहा—"यह क्या नादानी है, सब ठीक हो जायगा। सब ठीक······"

"पर मैं जाऊंगी, ठहर नहीं सकती।"

"भला यह भी कोई बात है, तुम्हारी हालत क्या है यह तो देखो !"

भामा ने दोनों हाथों से मुंह ढक लिया। उसने कहा—

तुम क्या मेरा एक उपकार कर दोगे ? थोड़ा जहर मुझे दे दोगे ? मैं वहाँ सड़क पर जाकर खा लूंगी।

"यह क्या बात करती हो प्रभा की माँ ? हौंसला रखो, सब ठीक हो जायगा !"

"हाय मैं कैसे कहूं ?"

"आखिर बात क्या है ?"

"यह पापिनी एक बच्चे की मां होने वाली है, तुम नहीं जानते !"

"जान गया प्रभा की मां ! पर घबराओ मत, सब ठीक हो जायगा।"

"हाय मेरा घर !"

"अब इन बातों की इस वक्त चर्चा न करो।"

"क्या तुम मुझे क्षमा कर दोगे ?"

"दुनिया में सब कुछ सहना पड़ता है, सब कुछ देखना पड़ता है।"

"अरे देवता, मैंने तुम्हें कभी नहीं पहिचाना !"

"कुछ बात नहीं, कुछ बात नहीं, एक नींद तुम सो लो प्रभा की माँ।"

"आह मरी, आह पीर !"

"अच्छा; अच्छा ! प्रभा बिटिया, तू जरा मां के पास बैठ, मैं अभी आता हूं बेटी। प्रभा की माँ घबराना नहीं, पास ही एक दाई रहती है, दस मिनट लगेंगे। हौंसला रखना।"

और वह कर्तव्यनिष्ठ मास्टर साहेब, जल्दी जल्दी घर से निकल कर, दिवाली की जलती हुई अनगिनत दीप-पंक्तियों को

लगभग अनदेखा कर, तेजी से एक अंधेरी गली की ओर दौड़ चले।

(१३)

"चरण-रज दो मालिक।"

"वाहियात बात है, प्रभा की माँ।"

"अरे देवता, चरण-रज दो, ओ पतित पावन, ओ अशरण-शरण, ओ दीनदयाल चरण-रज दो!"

"तुम पागल हो गई हो प्रभा की मां!"

"पागल हो जाऊंगी! तीन साल में दुनिया देख डाली, दुनिया समझ डाली, पर इस अन्धी ने तुम्हें न देखा, तुम्हें न समझा।"

"यह तुम फालतू बकझक करती रहोगी तो फिर ज्वर हो जाने का भय है। बिटिया प्रभा, अपनी मां को थोड़ा दूध तो दे।"

"मैं भैया को देखूंगी बाबूजी।"

भामा ने पुत्री को छाती से लगा कर कहा—"तू मेरी बच्ची अपने बाप की बेटी है—इस पतिता मां को छूदे जिससे वह पाप-मुक्त हो जाय।"

"नाहक बिटिया को परेशान मत करो प्रभा की मां!"

"हाय, पर मैं तुम्हें मुंह कैसे दिखाऊंगी?"

"प्रभा की मां, दुनिया में सब कुछ होता है। तुमने इतना कष्ट पाया है, अब सब समझ गई हो। उन सब बातों को याद करने से क्या होगा, जो होना था हुआ! अब आगे की सुध लो। हां, अब मुझे तनखा साठ मिल रही है प्रभा की मां,

और ट्यूशन से भी तीस-चालीस पीट लाता हूं। और एक चीज तो देखो, प्रभा ने खुद पसन्द करके अपनी अम्मा के लिये खरीदी थी इस दिवाली को।"

वे एक नवयुवक की भांति उत्साहित हो उठे, बक्स से एक रेशमी साड़ी निकाली और भामा के हाथ में देकर कहा—"तनिक देखो तो।"

भामा ने हाथ बढ़ा कर पति के चरण छुये। उसने रोते-रोते कहा—"मुझे साड़ी नहीं, गहना नहीं, सुख नहीं, सिर्फ तुम्हारी शुभ दृष्टि चाहिये। नारी-जीवन का तथ्य मैं समझ गई। किन्तु अपना नारीत्व खोकर। वह घर की साम्राज्ञी है और उसे खूब सावधानी से अपने घर को चारों ओर से बन्द करके अपने साम्राज्य का स्वच्छन्द उपभोग करना चाहिये, जिससे बाहर की वायु उसमें प्रविष्ट न हो—फिर वह साम्राज्य चाहे भी जैसा लघु, तुच्छ, विपन्न, असहाय क्यों न हो?

मास्टर साहेब ने कहा—"प्रभा की मां, तुम तो मुझसे भी ज्यादा पण्डिता हो गईं!" वे ही-ही करके हंसने लगे।

उनकी आंखों में अमल धवल उज्ज्वल अश्रु-बिन्दु झलक रहे थे।

टार्च लाइट

दुर्भाग्य एक अपरिसीम और अपर्याप्त वस्तु है। वह मनुष्य के जीवन का बहीखाता है। इस बहीखाते में मनुष्य के जीवन के पुण्य ही नहीं चरित्र दौर्बल्य और कुत्सित कार्यों एवं मानसिक कलुष का भी लेखा-जोखा आना-पाई तक हिसाब करके ठीक २ लिखा जाता रहता है। लोग कहते तो यह हैं कि दुर्भाग्य मनुष्य पर लादा गया बोझा है परन्तु सच पूछा जाय तो यह मनुष्य की पाप-कमाई की पूंजी ही है। पाप के विषय में भी एक बात कहूं, लोग पाप की गठरी को बहुत भारी बतलाते हैं मेरी राय इस से बिलकुल ही दूसरी है, वह न तो उतनी भारी ही है जिसे लादने को कुली या छकड़ा गाड़ी की आवश्यकता है न वह जैसा कि लोग कहते हैं—ऐसी ही है कि जो केवल मरने के बाद परलोक में ही खोली जायगी। मरने तक उसे मनुष्य लादे ही लादे फिरेगा। वह तो शरीर में हाथ पैरों के बोझ के समान है जिसे आदमी बड़े चाव से लादे फिरता है और कभी भी उकताता नहीं है। वह चाहे जब इसकी एक चुटकी का स्वाद ले लेता है और उसके तीखे और कड़ए स्वाद पर उसी तरह लट्टू है जैसे वह अन्य नशे पानी की चीजों के कुस्वाद पर। नशे-पानी की चीजों से पाप में केवल इतना ही अन्तर है कि नशे पानी की चीजें मँहगे मोल बिकती हैं परन्तु पाप मनुष्य के

जीवन के चारों ओर बिखरा पड़ा है और उसे जितना वह चाहे बटोर कर अपने कंधों पर लाद लेने में कोई मनाही नहीं है। उस पर कोई चौकीदार-जमादार-सिपाही पहरा नहीं दे रहा है। वह हवा,पानी से भी अधिक सस्ता और सुलभ है। इसी से मानव स्वच्छन्द भाव से युग–युग से उसके सेवन का अभ्यासी रहा है। परन्तु अभी यह चर्चा यहीं तक रहे, फिलहाल आप हमारी कहानी सुनिये।

एक दिन सन्ध्या समय अकस्मात् ही विनय की उससे भेंट हो गई। विनय के लिये यह साधारण घटना थी। जीवन के पौर ही पर उसे विधुर होना पड़ा, पत्नी का पाप पति का दुर्भाग्य हो जाता है। उस दुर्भाग्य ने विनय को स्वाभाविक नहीं रहने दिया इन्द्रियों की ज्वाला ने उसे इधर–उधर देखने ही न दिया। जो मिला उसने खाया, जो बचा फेंक दिया। यौवन था, वेतन था, विदेश था और निर्मम सैनिक जीवन था जिसका व्यवसाय ही हिंसा है। वहां कोमल भावुक जीवन कहाँ? वैसी २ न जाने कब टकराईं, चूर २ हुईं और फेंक दी गईं! विस्मृत भी कर दी गईं।"

परन्तु यह छुई भी न जा सकी। भावना की भीति ही उसकी रक्षक बनी। असहाय बालिका दुर्भाग्य की चक्की में पिसी हुई अज्ञात वैधव्य का सूनापन माथे पर लिये, नवयौवन के ज्वर को स्कूल की पुस्तकें पढ़ २ कर दूर किया चाह रही थी। यही सब ने कहा था। स्त्रियों का सौभाग्य दुर्भाग्य पुरुषों के सौभाग्य दुर्भाग्य के समान क्षण में बदलने वाला नहीं। वह अपना नारी भाव उसी अपक्वावस्था में जान गई थी और

दुर्भाग्य की अमिट अशुभ छाया से भी वह अभिज्ञ थी। वह चुपचाप रोगी पिता की दैनिक परिचर्या पूरी कर, मृत माता के लिये एक बूंद आंसू बहा स्कूल जाती, धरती पर दृष्टि दिये कोमल तलुओं के मृदुल चिन्ह पक्की चमचमाती नागरिक सड़कों पर बनाती हुई अनधिकारणी सी। क्यों कि वे सड़कें वास्तव में उसके लिये नहीं, मोटरों पर—बग्घियों पर चलने वालों के लिये थीं। स्कूल से लौटती बार तारकोल की गर्मी से उसके तलुए झुलस जाते थे। घर पहुंच कर पिता की आंख बचा वह अपनी ही गोद में लेकर उन पर प्यार के हाथ फेरती। केवल यौवन के स्वप्न की सूचना की ही उमंग ने उसे यह अनुभूति दी थी कि सौभाग्य यदि होता तो कोई इन तलुओं पर इसी भाँति सुखस्पर्श करता।

पति को उसने स्पर्श तो किया था पर तब वह युवती नहीं-बालिका थी, पति साथ का मर्म उसने तब जाना नहीं। अब यौवन ने, शिक्षा ने, संसार ने और भावुक स्वप्नों ने पति की करोड़ों कोमल और प्रिय मूर्तियां उसके सामने नित्य बनानी और बिगाड़नी प्रारम्भ करदीं। बहुत बार वह उन मूर्तियों के साथ खेल कर हँसी, रूठी, मचली। और उनके टूट जाने से फूट २ कर रोई। धीरे धीरे उसने अनुभव किया कि मन के भोजन से ठोस शरीर की तृप्ति नहीं होती। शरीर के लिये ठोस पति चाहिये—सशरीर पति।

विनय से ज्यों ही उसका अकस्मात् साक्षात हुआ, उसने पहली ही दृष्टि में उस की भूखी आंखों की याचना को जान लिया। उसने चाहा याचक को कुछ देकर सुखी करना चाहिये! उसके

यह भी अनुभव किया कि कुछ देने से कुछ मिलेगा भी, सम्भवतः सुख। परन्तु संस्कृत आत्मा ने तभी उसे सावधान कर दिया कि नहीं। ऐसा देन लेन किसी भी स्त्री पुरुष में हो नहीं सकता जब तक वे पति पत्नि न हों। उसकी भीरुता, शील और संस्कार सब मिल कर उसकी प्रवृत्ति का विरोध कर उठे। उधर विनय की याचना की सीमा लांघ गई। वह अपने सम्पूर्ण पौरुष को अनादृत करके निरीह भिखारी की भांति दीन वचनों पर उतर आया। कहिये, वह सरल तरल कोमल बालिका अब क्या करे? देने ही के लिये जिस सम्पदा का भार वह लिये फिर रही है, उसे याचक सामने पाकर कैसे न दे? फिर याचक की प्रिय मूर्ति, जिसके दर्शन ही से संचारी भावों का उदय होता है, और उसकी आतुर आकुल प्रार्थना, वेदना-प्रदर्शन की ज्वाला का दाह, आंखों की गर्म पानी की बूंदें? कहिये आप? सामने घर को आग में जलता देख कर हाथ में पानी भरा घड़ा रहते कौन उसे आग में झोंक देने के लिये आनाकानी करेगा?

परन्तु लड़की ने सत्साहस किया दान का। बोझा लादे ही रही। विनय में ले डालने की जितनी आतुरता थी दे डालने की उससे अधिक आतुरता हृदय में रख कर भी उसने कुछ दिया नहीं। दान का बोझा ढोती रही। और एक दिन विनय से उसकी जी भर कर बातें हो गईं।

"क्या डरती हो मुझ से?"

"जिसे प्यार किया जाता है क्या उससे कोई डरता है?"

"तो दूर २ क्यों?"

"दूर तो तुम्हीं हो ?"

"तो तुम मेरे निकट आती क्यों नहीं ?"

"कैसे ?"

"क्या मुझ पर विश्वास नहीं ?"

"फिर वही, जब डर नहीं तो विश्वास क्यों नहीं ?"

"विश्वास करती हो ?"

"क्यों नहीं ?"

"तो मेरे निकट आओ, इतनी निकट कि हम तुम दो न रहें।"

"किन्तु कैसे ?"

"बाधा क्या है ?"

"यही कि तुम मर्द हो, मैं औरत।"

"मर्द के लिये औरत और औरत के लिये मर्द है।"

"नहीं, नहीं।"

"तब ?"

"पति के लिये पत्नि, पत्नि के लिये पति।"

"अच्छा यह बात है ?"

"क्या यह उसके योग्य है ?"

"ओह, क्या बुरा मान गईं, परन्तु सुना है मर्द ही तो पति होता है।"

"नहीं।"

"तब ?"

"पति ही पति होता है।"

"कैसे ?"

"मर्द जगत् में बहुत हैं पति केवल एक है, वह है तब भी है, नहीं है तब भी है !"

"और मर्द ?"

"वह है तब भी नहीं, और नहीं है तब भी नहीं।"

"किन्तु ?"

"किन्तु क्या ?"

"मर्द ही में पति की भावना की जाती है।"

"नहीं पति में मर्द की भावना की जाती है।"

"तो स्त्री को पहिले पति चाहिये पीछे मर्द ?"

"हां।"

"और यदि पति पीछे मर्द न निकले ?"

"तो लाचारी है, वह रहे ही नहीं तब भी लाचारी है।"

"आह, तुम्हारे मन में पति के लिये इतनी वेदना है ?"

"पति के लिये नहीं।"

"तब ?"

"तुम्हारे लिये !"

"मेरे लिये नहीं।"

"मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ।"

"क्या मुझ से भी अधिक ?"

"हां !"

"तब दूर-दूर क्यों ?

"कह तो दिया।"

"समझ गया, मैं आज से मन-वचन-कर्म से धर्मपूर्वक तुम्हारा पति बनता हूं।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"यह कोई मर्यादा नहीं है।"

"तब मर्यादा क्या है ?

"यह सब जानते हैं।"

"तुम चाहती हो कि मैं नियमपूर्वक तुम से विवाह कर लूं ?"

"यदि यही चाहूं तो ?

"मुझे स्वीकार है।"

"तो मैं मन-वचन से तुम्हारी दासी।"

"नहीं रानी !"

"रानी भी सही।"

"तो प्रिये अब ?"

"नहीं, नही।"

"अब नहीं क्यों ?"

"जब तक दुनिया मुझे पति स्वरूप में तुम्हें न दे दे।"

"किन्तु वह झूठा दिखावा है, मैं आज देवता नक्षत्र और दिवंगत गुरू जनों के समक्ष तुम्हें पत्नि भाव से ग्रहण करता हूं, लाओ हाथ दो।"

"नहीं ऐसा न करो।"

"यह मर्यादा से विपरीत नहीं है प्रिये, ऐसा सदा होता आया है।"

"नहीं, नहीं ऐसा नहीं।"

"नहीं प्रिये, देवता साक्षी हैं, यह स्तब्ध रात्रि, नदी का यह शीतल उपकूल, यह चांदी सी रेती और आकाश में हँसते हुए तारे। आओ मेरे निकट···।"

"नहीं, नहीं।"

"आओ!"

"नहीं, नहीं, नहीं!"

"आओ"

"नहीं, नहीं।"

"आओ।"

"नहीं।"

"आओ, आओ···।"

"न-न-हीं···"

"आ-आ-आ-आ-ओ············"

(२)

और इस प्रकार उनका देन-लेन प्रारम्भ हो गया। वह अधिकाधिक बढ़ता ही गया। जहां विश्वास है, प्रेम है, परस्पर की एकता है, वहां देन लेन बढ़ेगा क्यों नहीं। वह बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया। कलरव करते हुए पक्षी, कलकल करती हुई लहरें, टिमटमाते तारे और चाँदी के समान अमल रेती उनके लेन देन की साक्षी रही। मानव जनपद के सामने इस लेन देन का हिसाब रखने की उन्हें फुर्सत नहीं ही मिली। और एक दिन अचानक उसने देखा—उस लेन-देन में असमानता सी आ गई है, उसे एक दिन अचानक ऐसा प्रतीत हुआ कि उसने जो वह समझती रही थी कि वह देती ही रही

है--जो लिया है उसका भार कुछ बढ़ रहा है। थोड़े दिनों में संदेह मिट गया, उसने जो दिया था—वह सब बेट्ट खा दे गया। और उसने जो लिया उसके भार से वह एक दिन अधमरी हो गई।

उसने डरते २ विनय से कहा—

"यह बोझ बढ़ता ही जा रहा है, यह तुम्हारा प्रेमोपहार है इसे सब से कह दो—कोई यह न समझे कि चोरी की है।"

विनय ने सिगरेट का धुंएँ का बादल बनाते हुए कहा—चिन्ता न करो, चुटकी बजाते इस बोझ को कहीं कूड़े के ढेर में फेंक दिया जायगा।

पर बोझा उसे ढोना पड़ा। कूड़े के ढेर में नहीं फेंका गया। वह उसे ढोते २ थक गई, पीली पड़ गई, कमजोर हो गई। किसी की भी इस पर नजर न पड़े इसके लिये उसने बड़े बड़े झूट, जाल असत्य और न जाने क्या क्या किये। वह अब विनय के जितने पास आना चाहती वह दूर हटता। जब बोझे की बात चलती—कहता—फिक्र न करो, वह झुंझला भी उठता, खीज भी उठता, डांट भी देता। उसे रोना पड़ा - पहिले छिपकर सिसक सिसक कर बाद में ढ़ढ़ मार, कर पछाड़ खाकर, धरती पर सिर पटक कर।

परन्तु कुछ हुआ नहीं।

(५)

एक दिन स्कूल से आकर उसने देखा घर में अंधकार है, सन्नाटा है, दिया जला नहीं है। पिता को उसने पुकारा—पर जवाब नहीं मिला। दिया जलाकर देखा और उसका सारा रक्त पानी हो गया।

उसने देखा बूढ़े पिता ने अपनी महायात्रा उसकी गैरहाजिरी ही में करली है। उनका मृत शरीर पड़ा है। उसने कठिनता से अपने को मूर्छित होने से रोका। वह आंखें फाड़ फाड़ कर मृत पिता के विकृत मुख को देखने लगी। उनकी अधखुली निस्पन्द आंखें देख वह उस सूने अंधेरे घर में भय से चीख उठी!

परन्तु यह सब निरर्थक ही था। जीवन एक कठोर सत्य है। वह भीति, भावुकता और करुणा के वशीभूत नहीं होता। उसने आँसू पोंछे, एक गहरी सांस ली। उसने टार्च लाइट हाथ में ली और वह विनय के घर की ओर चली। सड़क गली और रास्ते उसने पार किये। आते जाते जनों के उसे धक्के खाने पड़े पर वह अंधेरी अशुभ गलियों में हाथ के टार्च की लाइट फेंकती हुई आगे बढ़ती गई।

गली के किनारे पर ही से देखा सामने बिजली की रोशनी और गैस के हँडों से गली जगमगा रही है। बैंड बज रहा है। बहुत से स्त्री पुरुष बढ़िया वस्त्र पहने एकत्रित हैं। चांदी के वर्क लगे पान बाँटे जा रहे हैं। गुलाब जल छिड़का जा रहा है वह आगे बढ़ी। घोड़े पर दूल्हा था। उसने टार्च की लाइट दूल्हे पर फेंकी। वह विनय था। क्षण भर को उसका सिर घूम गया। परन्तु अकस्मात् ही उसकी वेदना और विस्मृतियां मुस्करा उठीं। एक मुस्कान की झलक उसके होंठों पर आई। विनय ने देखा। धीरे से झुक कर एक साथी मित्र से कहा—वह इस वक्त यहां क्यों?"

मित्र ने पूछ कर बताया। वह कहती है पिता मर गये उनकी अकेली लाश घर पर पड़ी है। विनय ने क्षण भर सोचा

और मित्र के कान में एक बात कही। मित्र उसे एक ओर अंधेरे में ले गया। एक कागज का टुकड़ा उसकी मुट्ठी में पकड़ा दिया। भर्त्सना के स्वर में कहा इस मौके पर तुम्हारा यहां रहना आज ठीक नहीं था। इसे लो और अपना काम करो।

मित्र तेजी से फिर भीड़ में मिल गये। उसने टार्च लाइट से देखा उसकी मुट्ठी में एक सौ रुपये का नोट था। कह नहीं सकते उसने उसे अस्पृश्य समझ कर फेंक दिया या वह उसके बोझ को न सम्हाल सकी। वह नोट वहीं उसकी मुट्ठी से गिर गया। उसने हाथ के टार्च को नीचे झुका दिया। रौशन नहीं किया। वह अंधेरी सूनी गन्दी और ऊबड़ खाबड़ गलियों को पार करती, ठोकर खाती, गिरती, उठती अपने घर की ओर चली गई। जहाँ उसका एक मात्र आधार पिता चुपचाप महानिद्रा में सो रहा था।

वन्स मोर

जी हां, मुझे इस बात से कोई सरोकार नहीं कि आपकी जाती राय क्या है। लेकिन मेरी पक्की राय है कि नये आजाद हिन्दुस्तान में जितने ग्रेजुएट हैं, खासकर बी० एल०, जिन्हें मैं 'बैल' कहना ज्यादा पसन्द करता हूँ और चाहता हूँ कि आप भी इन मरदूदों को बैल ही कहा करें—उन्हें सीधे पाकिस्तान भेज दिया जाय। पाकिस्तान इसलिए कि अफसोस अब काला पानी बंद हो चुका। फिर काले पानी में उतनी मुसीबतें, अन्धेरगर्दी, खतरे और खून खराबियां भी नहीं जितनी कि पाकिस्तान में। फिर वहां जाकर ये नामाकूल बैल मेरा मतलब है बी० एल०, जितना चाहें सींग पूँछ हिलायें— हिन्दुस्तान उनके खतरों से बाल-बाल बचा रहेगा।

जी हाँ, आप मुझ से पूछ सकते हैं कि इन बैलों के सम्बन्ध में मेरी यह राय क्यों बनी? जनाब, पहली बात तो यह है कि बन्दा बीस साल कानूनगोई कर चुका है, जिन्दगी में घास नहीं छीली और जिन्दगी के ६० साल बेफिकरी से सोते हुए नहीं बिताये। दुनिया देखी है और दुनिया को मेरी राय की कदर करनी चाहिए। मैं दुनिया के भले के लिये ही कहता हूं कि ये नामाकूल बैल—मेरा मतलब बी० एल०,

नई दुनियाँ के लिये सबसे बड़े खतरे हैं, खासकर उन बुजुर्गों के लिये जो लड़कियों के बाप हैं। समझ में नहीं आता, आपसे दिल खोल कर बात कहूं या सिर के बाल नोच लूं। ये बी० एल०, बैल अदालतों में ही सींग-पूंछ चलाकर शरीफों को घायल किया करते थे, पर अब तो ये घरों में घुस-घुसकर, साहेब घरों में घुस-घुसकर वह पाजीपन करते हैं कि खुदा की पनाह!

जी हां, कहता तो हूँ कि बदनसीबी से लड़कियों का बाप हूं, दो-दो लड़कियों का। लेकिन साहिब, इसमें मेरा क्या कसूर है? आप ही इंसाफ कीजिए, दुनियादारी का मामला है हर मर्द औरत की शादी दुनिया का आम दस्तूर है। और शादी होने पर बाल-बच्चा होना कुदरत का तकाजा है। बाल-बच्चों में लड़के भी होते हैं, लड़कियां भी होती हैं। लड़कियां भी तो औलाद हैं साहिब, कोई पत्थर की पटिया नहीं। फिर लड़कियां न हों तो लड़के कहां से हों, जरा गौर तो कीजिए!

जी हां, खूबसूरती और बदसूरती का भी बन्दा जिम्मेदार नहीं। मैं कोई लड़की की माँ के पेट में घुसकर बच्चों की सूरत गढ़ नहीं सकता था, उनपर रंग-वारनिश नहीं कर सकता था मुलम्मा नहीं चढ़ा सकता था। वह तो कुदरत का ही काम था। कुदरत ने खूबसूरत-बदसूरत जैसे बच्चे दिये, मैंने छाती से लगाये, पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया। क्यों साहेब, एक शरीफ बाप यही तो कर सकता था? या वह कुदरत के काम में दखल दे सकता है? कहिये आप?

जी हां, मानता हूं मैं काला आदमी हूँ। मेरे बच्चे और खासकर लड़कियाँ भी काली हैं। सूरत जैसी है वैसी है। इसमें शर्म काहे की और झेंप कैसी? फिर हम हिन्दुस्तानी तो पुश्त-दरपुश्त से काले आदमी हैं। दो दिन गोरों के राज्य में रहने से क्या हम अपने कौमी रंग से नफ़रत करें? या अपनेको गोरों का भतीजा समझें? और साहेब, अब तो गोरे भी हिन्दुस्तान से मुंह काला कर गये। अब तो कालों ही का अमल बरामद सारे हिन्दुस्तान में है। आजादी कालों को ही तो मिली है? फिर साहेब, कालों की खूबियां भी कम नहीं। हमारे भगवान कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द काले थे जिनपर सोलह हज़ार गोपियां रीझ-रीझ लट्टू होती रहीं। एक-दो नहीं, सोलह हजार। और साहेब, हमारे देवता शालिग्राम भी काले, देखिये आंख की पुतली जो दुनियां की रोशनी कहलाती है, काली, बसन्त का गायक भौंरा काला, कहाँ तक कहें—जिस तवे पर रोज पकाकर रोटियाँ खाते हैं, वह भी काला, जिस स्याही से प्रेम-पत्र लिखे जाते हैं वह भी काली, और जिन रातों में प्यार के बही-खाते खोलकर देन-लेन किया जाता है वह भी काली, आंखों का अञ्जन और रेलगाड़ी का ऐञ्जन भी काला। कहां तक कहूँ—अब आपसे पर्दा क्या? जब कहने ही बैठा हूँ तो कहे देता हूँ कि जबतक सिर और मूंछों के बाल काले रहे, लल्ली की अम्मा तलुए सहलाती रहीं—और साहेब जब से ये सफ़ेद हुए, अफ़सोस! उसका तौर-तरीक़ा ही बदल गया, अब तो साहेब, जब देखिए घुड़क कर बोलती है।

जी हां, मैं लड़कियों की बात कह रहा था। मेरे दो लड़कियां हैं, मैं उन्हें कोहे-काफ़ की परी नहीं कह सकता, न यही कहना पसन्द करता हूँ कि उन्हें सफेद कोढ़ की बीमारी है। अजी, घर-गिरस्ती में जैसी लड़कियां आम तौर पर होती हैं वैसी ही हैं। मगर यह बात मैं अपनी शराफत की वजह से कह रहा हूँ। शरीफ आदमी अपनी औलाद की तारीफों की डींग नहीं हांकते। पर मैं निहायत अदब से आपको बताना चाहता हूँ, मेरी लड़की ने सिर्फ १९ साल की उम्र में एम० ए० में यूनिवर्सिटी भर में दूसरा दर्जा पाया है। छोटी लड़की १७ साल की है, वह बी० ए० फाइनल में पढ़ रही है इतनी। शिक्षा पाने पर भी साहेब, मेरी लड़कियाँ न तो मेम साहेब की भांति ऊंची एड़ी के जूते पहनकर हवाखोरी करती हैं, न सिनेमा की शौकीन हैं। वे अपनी अपढ़ माँ के साथ घर-गिरस्ती के सब छोटे-बड़े काम करती हैं घर गिरस्ती को व्यवस्था से रखना उनका सबसे बड़ा काम है, यही मैंने उन्हें सिखाया है। मैंने उन्हें कभी पराए घर का ईंधन नहीं समझा, मैंने उन्हें लड़कों के ही समान शिक्षा दी है। यहां तक कि मेरे पांच बच्चे हैं, तीन लड़के और दो लड़कियां। मैंने अपनी तमाम सम्पत्ति को बराबर के पांच हिस्सों में बांट कर पांचों को बराबर हिस्सा देना तय किया है। और मेरा यह इरादा है कि लड़का हो या लड़की, प्रत्येक की शादी करके और उसका हिस्सा उसे देकर उसे शादी के तत्काल बाद अलहदा कर दूंगा। मैं यही कर सकता था और यही मैंने किया।

जी हां, हिन्दुस्तान आजाद तो हुआ है, पर गुलामी जो उसकी नस-नस में भर गई है, वह तो अभी भी कायम है। फिर आज़ाद अभी सिर्फ हिन्दुस्तान हुआ है, हिन्द नहीं। बदकिस्मती से मैं सिर्फ हिन्दुस्तानी ही नहीं, हिन्दू भी हूं। इसलिये मेरे खून में तिगुनी गुलामी का असर है। एक हिन्दुस्तानी होने की गुलामी, दूसरी हिन्दू होने की गुलामी, तीसरी खानदानी होने की गुलामी। सो इस तिगुनी गुलामी के बोझ को ढोता हुआ मैं अपनी लड़कियों को ऊँची तालीम देने पर भी उनकी गुलामी की बेड़ियों को नहीं तोड़ सका। यह मेरा या आपका या किसी एक आदमी का काम नहीं है, यह समाज का काम है। मैं क्या कर सकता हूँ? मुझे अपने लड़कों के लिये लड़कियाँ ढूंढनी पड़ रही हैं और लड़कियों के लिये लड़के। अब मैं कैसे बताऊँ आपको कि लड़कियों के लिये लड़का ढूँढना कितना जलील, अपमानजनक और बेहूदा काम है! इसको लड़कियों के बाप ही जान सकते हैं, और कोई नहीं।

जी हां, मैं सब कुछ कर गुजरा। अखबारों में एडवरटाइजमेण्ट दिये। पेट पर पत्थर बांध कर सैंकड़ों मील सफर कर घर-घर अलख जगाये। दोस्तों, सम्बन्धियों, नातेदारों से कहा कि खुदा के लिये कोई लड़का तलाश करो। पर अभी तक सिवा झक मारने के नतीजा कुछ भी नहीं हुआ। लल्ली की अम्मा से कहता हूँ कि मेरा सिर मत खाओ, यह मेरा काम नहीं। मैंने बच्चों को पढ़ा लिखा दिया, वे लोग अपना जीवन साथी जब उन्हें आवश्यकता होगी, ढूंढ लेंगे।

पर मैंने कहा न—वह पुरानी तालुक़ महकाने वाली रानी की अम्मा थोड़ी ही रही हूँ? अब तो वह बात बात पर गुब्बारे की तरह मुँह फुलाकर और भेड़िये की तरह गुर्राकर कहती हैं कि बुढ़ापे में मत मारी गई है, कहती हैं, तुमको भी मैंने राह चलते पकड़ लिया था? अजी, एक बात कहती हैं? उनकी एक एक बात में बात है। मगर कोई पूछे उनसे—तब क्या मैं आज कल के इन बैलों के जैसा बेगैरत और बेतमीज़ था? शादी तो दरकिनार, एक बच्चा होने के बाद तक भी मैंने दिन में कभी उनकी माँ से एक बात नहीं की। पर वह ज़माना ही और था साहब!

जी हाँ, आप कहानी सुनिये। कहानी क्या, इस बुढ़ापे की मिट्टी पलीद होने का दास्तान।

जी हाँ, घूमते, भटकते, धक्कमधक्के खाते आखिर एक चीज़ से, मेरा मतलब बी० ए० से जा टकराया। बाप ने लेन देन का खत्म सौदा कर चुकने पर सफाई से कहा—लड़का लड़की देखेगा। उसके बाद बात पक्की होगी।

मुझे क्या उज्र था? मैंने स्वीकार किया। दिन समय मुकर्रर हो गया।

जी हाँ, बीस साल क़ानूनगोई की है, चार पैसे पैदा किये हैं; इज़्ज़त भी रखता हूँ। आजकल के सफेद-पोश बाबुओं की तरह सारी तनख़्वाह धोबियों को ही नहीं चढ़ा दी। मोटा खाना, मोटा पहनना हमेशा से अपना दस्तूर रहा है। घर आपने देखा ही है। मामूली है। हमलोग सीधे-सादे तरीके से आराम से रहते हैं। मैं चाहता था कि आडम्बर का कोई

काम नहीं, बैल महाशय आवें, लड़की देख जांय। तबियत हो तो शादी करें, नहीं तो अपना रास्ता नापें,

परन्तु लल्ली की अम्मा, आप तो जानते ही हैं, उनका जो रवैया आजकल मेरे साथ है, बरस पड़ी—तुम्हारे सफेद बालों पर धूल। लड़का बैल है। मतलब बी० एल०, है। कोई मामूली नहीं फिर तीन साल धक्के खाने पर मिला है। ऐसा नहीं, भड़क जाय। सगाई सगाई होती है सीधेपन से काम नहीं चलता।

लड़के ने हां में हां मिलाई। सबने मिलकर मुझे 'केएडम' कर दिया। लड़के ने कहा—बाबू जी, आप दखल मत दीजिये, हम लोग बन्दोबस्त कर लेंगे। आप देखते रहें।

सो साहेब मैं देखता ही रहा। वह बैल—मेरा मतलब बी० एल०, आया। अब सुनिये आर उस नामाकूल की हरकत!

जी हाँ, आप साहेबजादे के इन्तजाम की तारीफ कीजिये। अपनी लियाकत की सारी खुर्चन खर्च कर उसने खत लिखा उस बैल को मेरा मतलब है, उस बी० एल० का। अपने एक दोस्त राय साहेब के लड़के के यहां सब इन्तजाम किया। बहुत सा फरनीचर किराये पर लिया गया, कालीन, मसनदें, चांदी के बर्तन आये काजी साहेब के घर से। राय साहेब के तमाम नौकर-चाकर साफ वर्दी पहिन कर लैस हो गये। लल्ली को बैठने के लिये बीच हाल में एक तख्त बिछाया गया और उसपर एक बढ़िया ईरानी कालीन बिछा दिया गया। सामने कैएटीन से एक बड़ी खाना खाने की मेज मंगाई गई और उसपर बहुत से फूलदान, गुलदस्ते और न जाने क्या-क्या सजा दिये गये।

घर में बिछाने की जितनी चादरें थीं, तमाम निकाल कर इधर उधर फैला दी गईं। सोचिये आप, कण्ट्रोल का जमाना—चादरें मुश्किल हैं, फिर धोबी लेता है एक चादर की धुलाई पूरे तीन आने। मगर बोले सो गया—अनाड़ी की जानें बला। साहेबजादे और लल्ली की मां का यह हाल था कि हत्ते पर ही नहीं चढ़ने देते थे। उधर लल्ली शर्म से मरी जा रही थी। वह बार बार मुझसे झुंझलाकर और रो-रोकर कहती थी यह क्या वाहियात ड्रामा रचा जा रहा है। परन्तु बूढ़ा बाप और जवान बेटी, इन दोनों की हिन्दू घर में मिट्टी पलीत है। क्या कहा जाय? हम लोगों की एक न चली। चली साहेबजादे की और लल्ली की अम्मा की।

जी हां, बैल आया और खूब दाना-पानी खाया। उसकी घूरा घारी से लल्ली तंग आकर उठ गई। उसने बहुत गुस्सा किया, बहुत रोई। और मैं साहेब! न गुस्सा कर सका, न रो सका।

जब बैल मेरा मतलब बी० एल०, चला गया तो सहेबजादे से मैंने रिजल्ट पूछा। और उसने उसी प्रकार उत्तर दिया जैसे आशावादी लड़के परीक्षा के पर्चे करके आते हैं और रिजल्ट के लिये धैर्य और उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। परन्तु साहेब, मुझे धैर्य कहां? मैंने कहा—सब बातें तो पहले ही तय हो चुकी थीं, सिर्फ देखा-देखी बाकी थी, सो वह भी हो गई। अब प्रतीक्षा कैसी? हाँ या ना एक बात होनी चाहिये। मैंने तार दिया कि अब अन्तिम निर्णय की सूचना दो। आप जानते हैं उस बैल ने क्या जवाब दिया? उसने अति संक्षिप्त तार दिया—'वन्स मोर'। और जब मैं उस संक्षिप्त तार का अभिप्राय जानने

उसके यहां गया। उसने कहा—एक बार लड़की को और देखा चाहता हूं। हाथों की उंगलियाँ ठीक ठीक नहीं देख सका। बीच में मुझसे माफी माँगते हुए कहा—नाराज मत हूजिये साहेब! हमारी ही बिरादरी में एक शादी होकर आई है, उस लड़की की उंगलियां और नाखून इस कदर खराब हैं साहेब कि बयान नहीं कर सकता, इसी वजह से जरा उंगलियां और एक बार देख लूं, तब अपनी राय कायम करूं।

जी हाँ, गुस्सा मैंने नहीं किया, सिर्फ नफरत की एक नजर उसपर फेंककर चला आया। चलती बार इतना अलबत्ता कह आया कि आप असल बैल, मेरा मतलब बी० एल० हैं। लल्ली की माँ ने सुना तो ऐसी बिगड़ी कि अब तक मुंह फूला हुआ है। उनका कहना है कि अच्छा खासा बैल, उनका मतलब है बी० एल०, हाथ से निकाल दिया। पर लल्ली अभी भी हंसते-हंसते लोट जाती है। क्या कहूं लल्ली की मां का रूठना देख उसके साथ मुझे भी हंसना पड़ता है।

सोया हुआ शहर

(०)—(०)

आगरे के विश्व विख्यात ताज को देखने के बाद, जो लोग भाग्यहीन शाहजहां के अन्तिम बेबसी के दिनों पर करुणा का भाव भर कर घर लौटते हैं, उनकी आगरा यात्रा अधूरी ही रहती है। दूर और निकट के यात्रियों का प्रायः यही रंग ढंग देखने में आया है कि ताज देखा, सिकन्दरे का चक्कर लगाया और आगरे की प्रसिद्ध दाल-मोठ और पेठे की छोटी सी पोटली पल्ले बांधी और समझ लिया कि आगरे की तफरीह पूरी हो गई।

उनमें से बहुत से यात्रियों को यह नहीं मालूम है कि आगरे के पार्श्व में एक सोया हुआ शहर भी है जिसका प्रत्येक निवासी सो रहा है—प्रत्येक भवन, प्रत्येक महल, प्रत्येक पत्थर सो रहा है, अनन्त अटूट नींद में ऐश्वर्य और विलास से थक कर या ऊब कर—जहां जाग्रत पीर शेख सलीम की उज्जवल समाधि है और बादशाह अकबर की भाँति जिस समाधि पर आज भी सहस्रों नर नारी पुत्र की भीख मांगने जाते हैं; जहां जीती जागती सुन्दरियों को गोट बना कर शतरंज खेली जाती थी; जहां एक खम्भे के आधार पर टिके हुए भवन में बैठ कर सम्राट अकबर तत्कालीन विद्वानों के साथ मनुष्यों के धर्म भाव की एकता पर गम्भीर विचार किया करता था; जहां जोधाबाई

ने मुग़ल हरम में राधामाधव की मूर्ति स्थापित की थी; जहां विश्व विख्यात बीरबल, खानखाना रहीम, विद्वान फ़ैज़ी बन्धु और कट्टर मुल्ला अब्दुल क़ादर उस बड़े मुग़ल के चरणों में बैठ कर भारत के साम्राज्य की व्यवस्था करते थे तलवार और क़लम से; और जहां तानसेन और बैजू बावरे ने अपनी तान से वायु मण्डल को पुलकित किया था।

इस समय हम उसी महानगरी की चर्चा करते हैं। उसका नाम फतहपुर सीकरी है। आगरा तब एक छोटा सा गांव जमुना तट पर था। वहां न ताज था न सिकन्दरा, न किनारी बाजार था, न भव्य किला। जब दोपहर की तेज धूप में तपी लुएँ धूल के बवंडर को लेकर सांयसांय आवाज़ करती उठती थीं तब आगरे की फूस की झोपड़ियां हिल उठती थीं! उस समय फतहपुर सीकरी में एक से एक बढ़ कर प्रसाद निर्माण हो रहे थे और बड़ी २ विभूतियाँ वहाँ एकत्रित हो रही थीं। वहाँ प्रबल प्रतापी मुग़ल साम्राज्य का निर्माण हो रहा था!

परन्तु हमारा वर्णन तो और आगे चलता है। सम्राट अकबर ही ने अपनी उस राजधानी को अधूरी छोड़ कर आगरे को राजधानी बना लिया था। और जब सम्राट अकबर अपने राज्य का विस्तार कर स्वर्गस्थ हुए तथा उनके पुत्र जहाँगीर ने मुग़ल तख़्त को सुशोभित किया, तब यह बेचारा भाग्यहीन शहर एक दलित मलित विधवा की भांति अपनी सम्पूर्ण श्री खो चुका था और इतनी ही देर में वे महल और प्रासाद खण्डर और सूने हो चले थे।

बादशाह जहांगीर अपनी आयु में पचास साल व्यतीत कर चुके थे। मुगल साम्राज्य का संगठन पूरा हो चुका था। काबुल, कन्धार, ईरान, तूरान, हब्श और कुस्तुन्तुनिया तक उसकी धाक जम गई थी। इंगलैंड और यूरोप के अन्य देशों के राजदूत भांति भांति के नजराने लेकर जहांगीर के दरबार में चौखट चूमते थे।

बादशाह बहुधा लाहौर के दौलतखाने में रहते थे। आगरा भी उनका प्रिय निवास था। वास्तव में आगरा मुगल साम्राज्य की राजधानी थी। राजधानी जहां विविध आश्चर्य और राजनैतिक घटनाओं का केन्द्र थी, वहां वह अनेक षडयन्त्रों का घर भी थी। बहुत सी खून खराबियाँ, बहुत सी अनीति मूलक कार्यवाहियां वहां आये दिन होती रहती थीं।

जहांगीर एक नर्म दिल प्रेमी और लापरवाह बादशाह थे। अफ़ीम और शराब दोनों का सेवन करते थे। उनका मिजाज प्रेमीजनों की भाँति कुछ सनकी था। असल बात तो यह थी कि वे नाम के बादशाह थे। असल बादशाह तो नूरजहां मलिका थी, जिसने अपने रूप, यौवन, चतुराई, खुशमिजाजी और बुद्धि वैभव से बादशाह और बादशाह के साम्राज्य पर भी अपना अधिकार कर रखा था।

मुगल साम्राज्य का कोई दरबारी अमीर नूरजहां की कृपा दृष्टि पाये बिना सल्तनत में अपनी प्रतिष्ठा कायम नहीं रख सकता था। बादशाह के पुत्र भी इसका अपवाद न थे। इस कारण मुगल राजधानी षड्यन्त्रों का एक गर्मागर्म केन्द्र बन गई थी। ये षड्यन्त्र बादशाह के भी विरुद्ध होते थे और बेगम नूरजहां के भी विरुद्ध।

अफवाह गर्म थी कि फतहपुर सीकरी इन षड्यन्त्रकारियों का एक जबरदस्त अड्डा बना हुआ है। इस अड्डे को भंग करके साम्राज्य में अमन और व्यवस्था कायम करने के लिये बादशाह ने अपने अनेक कर्मचारियों को भेजा परन्तु उन्हें कुछ भी सफलता नहीं मिली।

आगरे में इस बात का बड़ा आतंक फैला हुआ था कि आए दिन एक न एक राज कर्मचारी किसी असाधारण गुप्त रीति से पकड़ कर गायब कर दिया जाता है और कुछ दिन बाद उसकी लाश आगरे की शहर पनाह के फाटक पर मिलती है और एक इश्तहार में उसके जुर्म लिख कर टांग दिये जाते हैं।

यह भी बड़े जोरों से अफवाह थी कि ऐसी आज्ञायें फतेहपुर सीकरी से एक जबरदस्त गुप्त संगठन से प्रचारित होती हैं और वह संगठन जिसे प्राणदण्ड देता है उसकी रक्षा न बेगम नूरजहां कर सकती है और न सम्राट जहांगीर। इस आतंक का अन्त करने स्वयं बादशाह लाहौर के दौलतखाने से आगरे तशरीफ लाये थे। और अपने प्रमुख दरबारियों और राज कर्मचारियों की असफलता से खीझकर इस बार इन्होंने खुद शाहजादा खुर्रम को एक अच्छी सेना देकर फतहपुर सीकरी भेजा था।

❀ ❀ ❀

"तो जानेमन अब तुम यहीं आगए? अब कहीं जाओगे तो नहीं?"

"नहीं, दिलबर, कभी नहीं, अब हम चाहे जब मिल सकेंगे।"

"चाहे जब कैसे प्यारे ? अब्बा मुझे घर से बाहर आने देंगे तब तो ?"

"अच्छा क्या तुम्हें रोकते हैं, ताज ?"

"तुम नहीं जानते, कल वह शैतान खुर्रम यहां फौज लेकर आया है। बादशाह ने आगरे से उसे भेजा है, अब्बा की निगरानी करने को।"

"तो आने दो उस शैतान को, प्यारी ! वह हमारा क्या बिगाड़ लेगा।"

"क्यों नहीं, क्या तुमने नहीं सुना उसकी नजर बहुत खराब है ?"

"सच ! तुमसे किसने कहा ?"

"कहता कौन, क्या मैं नहीं जानती कि ये आगरे के जर्क बर्क शहजादे कैसे पाजी होते हैं।"

"तो क्या हर्ज है। नजर बैठ जाये शहजादे की, हिन्दुस्तान की मालिका बनोगी, इस गरीब की जोरू बन कर क्या मिलेगा?"

"तुम तो मिलोगे, जो तमाम जहान की मिल्कियत से ज्यादा हो।"

"मगर कहां मकई की मोटी रोटियां, टूटी खाट, पुराना छप्पर और कहां रंगमहल, हीरा, मोती, नाच, रंग।"

"ओह यूसुफ, तुम बड़ा जुल्म करते हो। मैं खुशी से वह रोटियां खाऊंगी और बना बना कर तुम्हें खिलाऊंगी। मैं उसकी आदि हूं। तुम औरत का दिल नहीं जानते, इसी से हीरा, मोती का लालच दिखाते हो।"

"तो इसमें आँखें क्यों भर लाईं, प्यारी ताज, मैं तो हँसी कर रहा था।"

"तुम्हारी हँसी में मेरी जान जायेगी।"

"नहीं नहीं जानेमन, ऐसा न कहो।"

"तो कहो तुम अब्बा से अब कब मिलोगे ?"

"बहुत जल्द। अंधेरा हो गया। चलो मैं पहुँचा आऊं।"

"पर कोई देख लेगा ?"

"देखने वाले की आंखें फूट जायँ।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। युवती १८ साल की एक बाला थी। उसका हीरे के समान उज्वल शरीर साधारण वस्त्रों में ढक रहा था और युवक एक दिहाती जमींदार सा मालूम पड़ता था। दोनों ने प्यार की नज़रों से एक दूसरे को देखा। युवक धीरे २ बस्ती की ओर चला, उसके साथ २ अपने सौरभ और चपल गति से आनन्द बखेरती हुई युवती भी साथ २ चली। राह बाट में अंधेरा छा रहा था।

❀ ❀ ❀

अंधेरे के सन्नाटे में कुछ आदमी सतर्कता से बातचीत कर रहे थे। उनमें एक भद्र पुरुष था जिसकी लम्बी सफेद डाढ़ी और गहरी काली आँखों से बुद्धिमता तथा गम्भीरता टपक रही थी। दूसरा व्यक्ति शाहजादा खुर्रम था, जिसकी आयु कोई २७ वर्ष की थी। दो आदमी हिन्दू राजपूत मालूम होते थे।

बूढे ने कहा, "तो शाहजादा, यह तो अच्छा हुआ। आप ही को आपकी निगरानी पर जहांपनाह ने तैनात किया है।"

"पर जहांपनाह को यह मुतलक़ मालूम नहीं है कि मैं ही सब फ़साद की जड़ हूं।"

"खैर तो अब इस फसाद की जड़ को उखाड़ फेंकने में देर न होनी चाहिये, शाहज़ादा," एक राजपूत ने कहा।

"तो आप चाहते क्या हैं, राजा साहेब ?"

"मैं कहना चाहता हूँ कि मुग़ल सल्तनत पर एक ऐसी औरत हुकूमत कर रही है, जिसकी न हम इज्जत करते हैं और न जिसे ऐसा करने का कोई हक़ है। वह अपनी झोंक में आकर मुग़ल तख्त के साथ खेल कर रही है। शाहज़ादा यह तख्त आपका है, इसे आप न बचायेंगे तो आप इस पर बैठ नहीं सकेंगे।"

"मगर मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"इस औरत को कैद कीजिये और बादशाह को तख्त से उतार दीजिये। और आप शहनशाह हिन्द होकर रियासत की बागडोर हाथ में लीजिये। हम सब आपके साथ हैं।"

"लेकिन यह क्या आसान है ?"

"क्यों नहीं, आपने ही तो कहा—अगले जुमे को बादशाह खुद यहां आरहे हैं।"

"तब ?"

"उसी दिन बादशाह और बेग़म दोनों को गिरफ्तार कर लिया जाय और सल्तनत को अपने तावे कर लिया जाय।"

"बूढ़े ने कहा, "हज़रत शाहज़ादा, याद रखिये कि जला-लुद्दीन अकबर का तख्त मुग़लों का है, ईरान की एक अनजान औरत का नहीं !"

"और मुग़लों के खून में हमारा राजपूती खून मिल चुका है, शाहज़ादा, इसलिये उनके लिये हम अपना खून बहा सकते हैं। मगर एक मनमानी औरत के लिये नहीं। यह मेरी राय

नहीं, जोधपुर, जयपुर, उदयपुर, बूंदी, सभी के राजपूत सरदारों की राय है।"

"तो आप सब लोगों की यही राय है ?"

"हम वचन देते हैं।"

"तो दोस्तो, मुझे मंजूर है। मैं आपसे बाहर नहीं, आज भी मगर मैं चाहता हूँ कि कोई भारी क़दम उठाने से पेश्तर एक मौक़ा दिया जाय। इस वक़्त बादशाह को सिर्फ़ ख़बरदार कर दिया जाय। फिर लड़ना ही है तो खुलकर लड़ा जायगा।"

सबने कहा, "ख़ैर, यही सही," और सभा बर्ख़ास्त हुई।

❀ ❀ ❀

बादशाह जहांगीर और नूरजहाँ की शाही सवारी फ़तहपुर सीकरी आई हुई है, इससे इस सोए हुये शहर में जागने के चिन्ह देख पड़ते हैं। सूनी और जनहीन गलियों में सिपाही घोड़े, हाथी, प्यादे और ख़ोजे गुलाम अपनी अपनी धुन में इधर से उधर आ जा रहे हैं। राजप्रासाद के बाहरी विशाल आँगन में उर्दू है। वहां बहुत से डेरे, तम्बू, दूकानें हैं। मोची, तमोली, क़साई, घसियारे, धोबी, हम्मामी, नानबाई अपने अपने काममें लगे हैं। सौदे सुलफ़ का बाज़ार गर्म है।

हज़रत बादशाह सलामत का डेरा मरियम के महल में पड़ा है। लोगों का कहना था कि यही महल बड़े बड़े रहस्यों और आश्चर्यों का ख़ज़ाना है। यहां मृत बादशाह अकबर और उनकी प्यारी बेगम मरियम की आत्मा रात को विचरण करती है।

लोगों ने इस महल से रात के समय अनेकों प्रकार की

आवाजें आती सुनी हैं, और भांति भांति के शब्द सुने हैं। बहुत लोग इसे भूतों का अड्डा समझते हैं। बहुत इसे विद्रोही षड्यन्त्रकारियों का अड्डा कहते हैं। बादशाह जहांगीर ने बेगम नूरजहां की सलाह से इसी में अपना डेरा जमाया है।

जल्दी में जितना साफ हो सकता था इसे साफ करके आरास्ता किया गया है। नीचे बादशाह का डेरा है, ऊपर की मंजिल में बेगम का। महल के भीतर तातारी बांदियों और खानजादों का कड़ा पहरा है। और बाहर अहदियों का जिनकी सरदारी बादशाह के लायक साले और नूरजहां के भाई आसफ जाह स्वयं बड़ी तत्परता से कर रहे हैं।

बादशाह बहुत मौज में हैं। महल के प्राँगण में जो फव्वारा चल रहा है उसके पास वाली संगमरमर की चौकी मसनद पर लगी है जहाँ उनकी प्यालों की मजलिस जुड़ी है। इस मजलिस में जिन्हें आने का अधिकार है वे जमे बैठे हैं। बादशाह अपने हाथ से उन्हें प्याले देते जा रहे हैं, और वे लोग बारबार कोर्निस करके अदब से ले लेकर पीते जा रहे हैं। धीरे धीरे सब की आंखों में सरूर की लाली छा गई, जबान बहक गई और अदब गायब हो गया। बादशाह वहीं मसनद के सहारे ढुलक कर सो गये और दरबारी लोग चुपचाप उठकर अपने अपने डेरों पर चले गये। गुलाम बादशाह को ख्वाबगाह में ले गये।

❀ ❀ ❀

अकस्मात बादशाह किसी अज्ञात वेदना से चीख उठे। आँख खोलकर देखा, पहिले तो कुछ समझ न पड़ा। वे बारंबार

आँखें बन्द करने और खोलने लगे। वे स्वप्न देख रहे हैं या जाग रहे हैं, यह उन्हें समझ न पड़ा।

उन्होंने देखा एक अपरिचित छोटे से किन्तु सुसज्जित कक्ष में वे बन्दी के तौर पर बैठे हैं। उनके पीछे दो क़दावर गुलाम नंगी तलवार लिए खड़े हैं। सामने एक रत्न जटित सिंहासन है, उस पर एक षोड़शी बाला रत्न जटित पोशाक पहिने रुआब से बैठी है। वह घूर-घूर कर तेज आँखों से बादशाह की ओर देख रही है। उसके तेज से दैदीप्यमान चेहरे की तरफ़ आंखें नहीं ठहरतीं हैं। एक पास खड़े गुलाम की ओर देख कर, बादशाह की ओर उँगली उठा कर रमणी ने कहा, 'यह तुम किसे ले आये हो, इब्राहीम ?'

"सरकार, यह हिन्दुस्तान का वही शराबी और ऐयाश बादशाह है।"

"इसका क्या क़सूर है, जो हमारे हुजूर में इसे हाजिर किया गया है ?"

"पहिली बात तो यह कि यह शराबी और ऐयाश है।"

"और ?"

"और इसने एक परदेसी औरत के ऊपर तख्तो ताज का सारा बोझ डाल दिया है जो सल्तनत में मनमानी धाँधली करती है।"

"वह औरत कौन है ?"

"उस औरत का नाम नूरजहाँ है, वह बादशाह की चहेती मलिका है। उसने अपने हजारों जासूसों का जाल बिछा रखा है। उनके जरिये से वह अपनी तमाम इच्छायें पूरी करती

है। उसकी ताक़त की हद नहीं, वह जो चाहती है वह करके ही छोड़ती है, चाहे वह अच्छा काम हो चाहे बुरा।"

"उसे हमारे हुजूर में हाजिर करो," मलिका ने हुक्म दिया और दो खोजों के पहरे में नूरजहां हाजिर हुई।

मलिका ने उसकी ओर उँगली उठाकर कहा, "इसने क्या किया है?"

"यह अपने दामाद शहरयार को बादशाह बनाना चाहती है। इसके लिये इसने तख्त के हक़दार शाहजादा खुर्रम को मार डालने की पूरी तैयारियां कर ली हैं। इसने राज्य के बड़े २ कई अमीरों और मसनबदारों को मार डाला है। इसी के हुक्म से विद्वान और वृद्ध खानखाना अब्दुररहीम दरबार में बेइज्जत हुआ है। इसी ने बहादुर सेनापति महाबतखां को सल्तनत का दुश्मन बनाया है। स्वर्गवासी सम्राट अकबर ने जो हिन्दू-मुसलमानों के प्रेम की बेल बोई थी इसने उसे उजाड़ दिया है। और यह विदेशी ईरानियों को शाही दरबार में भर रही है। इसी का भाई आसफखां वज़ीर बन कर मुग़ल सल्तनत में स्याह-सफेद जो चाहता है करता है।"

"शाहजादा खुर्रम को हाजिर किया जाय।"

दो खोजे शाहजादा को भी ले आये।

मलिका ने कहा, "क्या तुम कह सकते हो कि दिल्ली के तख्त पर किसकी हुकूमत है?"

"जी हां कह सकता हूँ, बेग़म नूरजहां की।"

"बादशाह जहांगीर की क्यों नहीं?"

"वे मलिका के हुक्मी बन्दे हैं।"

"क्या यह सच है कि बेगम की कार्रवाइयों से राजपूतों के दिल सल्तनत और बादशाह से फिर रहे हैं ?"

"जी हाँ, कितने ही राजपूत राजा जो पहिले तख्त के फ़र्मा-बर्दार थे अब बाग़ी हो रहे हैं। कुछ ज़ाहिरा, कुछ छुपे छुपे, और यही रँग ढँग रहा तो एक दिन वे खुल खेलेंगे।"

"क्या जहाँपनाह अपनी सफ़ाई पेश करेंगे ?"

बादशाह जो अब तक भी पूरे होशोहवास में न था, धीरे से बोला, "नहीं !"

"और हज़रत मलिका ?"

"नहीं," गुस्से से होंठ चबा कर मलिका नूरजहां ने कहा।

"और शाहज़ादा खुर्रम ?"

"जब जहाँपनाह ने और मलिका ने अपने को आपके रहम पर छोड़ दिया है तो मैं भी कुछ कहना मुनासिब नहीं समझता।"

"क्या यह मुनासिब न होगा कि इन दोनों को क़त्ल करके हस्ब मामूल अदालत आगरे की शहरपनाह के फाटक पर इनकी लाशों को डाल दिया जाय ?"

इसके जवाब में कुछ देर इस अद्भुत अदालत में सन्नाटा रहा, फिर कुछ अंधेरा हो गया और बादशाह और बेगम दोनों ने अनुभव किया कि एक प्रकार की बेहोशी उन पर छा रही है। थोड़ी देर में दोनों बेहोश हो गये।

❀ ❀ ❀

सुबह उठ कर बादशाह ने अपने को अपने पलंग पर सोते पाया। वे आंखें फाड़ फाड़ कर चारों ओर देखने लगे। रात की

तक एक बात उन्हें याद थी। उन्होंने अपने ख्वाजा सरा से पूछा, "रुस्तम, हम कहाँ हैं?"

"हुजूर जहाँपनाह, फतहपुर सीकरी के मुकाम पर अपनी ख्वाबगाह में तशरीफ़ रखते हैं।"

"और रात भर हम कहाँ थे?"

"जहाँपनाह आराम से यहीं सोते हैं।"

"यह बात तुम इत्मीनान से कह रहे हो?"

"जी हाँ हुजूर, यह गुलाम खुद तमाम रात खिदमत में हाजिर रहा है।"

"और तुम कहते हो, हम यहाँ से कहीं गये नहीं?"

"जी हुजूर।"

"कोई बाहरी आदमी भी यहाँ नहीं आया?"

"जी नहीं।"

"मलिका क्या जाग रही हैं?"

"जी हाँ, जहाँपनाह।"

"हम अभी उन्हें देखना चाहते हैं?"

गुलाम ने क्षण भर में उन्हें ला हाजिर किया। बेगम के चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। उन्होंने कहा, "खुदा का शुक्र है, जहाँपनाह बखैरियत हैं।"

"मगर तुम परेशान क्यों हो, मलिका?"

"मेरे होश हवास ठिकाने नहीं हैं मालूम होता है मैंने एक बहुत खराब ख्वाब देखा है।"

"ख्वाब?"

"ख्वाब ही उसे कह सकते हैं जहांपनाह, जब कि मेरी सारी लौंडियां कहती हैं कि मैं तमाम रात अपनी ख्वाबगाह में मीठी नींद लेती रही हूँ, तो और क्या हो सकता है?"

"मगर वह ख्वाब कैसा था?"

"ओफ! जहांपनाह, एक औरत के दरबार में हम और आप दोनों मुजरिम बन कर गये थे और शायद वहां से हमें क़त्ल का हुक्म हुआ है।"

"खुदा की मार, बेगम, मैंने भी ठीक ऐसा ही ख्वाब देखा है।"

"तो वह ख्वाब ही था, जहांपनाह?"

"जब रुस्तम कहता है कि मैं तमाम रात अपने पलंग पर सोता रहा हूँ, तो और क्या हो सकता है?"

"शैतान या जिन्नों की भी तो करामात हो सकती है।"

"मैं उसका क़ायल नहीं हूं। खुर्रम को हाजिर करो।"

एक खोजा दौड़कर बाहर गया, थोड़ी देर में खुर्रम ने आ-कर आदाब बजाया।

"खुर्रम रात तुम कहां थे?"

"अपनी ख्वाबगाह में, हुज़ूर।"

"मगर-मगर तुमने कोई ख्वाब देखा था?"

"याद तो नहीं पड़ता।"

"और तमाम रात तम अपनी ख्वाबगाह से बाहर नहीं निकले?"

"जी नहीं।"

"खैर तो आसफ कहां है?"

"हुजूर ड्योढ़ियों पर हाजिर है।"

"बुलाओ उन्हें।" शाहजादा के इशारे पर एक खोजा उन्हें बुला लाया।

बादशाह बोले "आसफ, इस मकान पर पहरा किसका था?"

"मैं खुद रात भर जाग कर पहरा देता रहा हूं और ५०० सिपाही महल की निगरानी पर तैनात हैं।"

'तुम कह सकते हो कोई बाहरी आदमी भीतर नहीं आया?"

"जी नहीं।"

"तुमने भीतर कोई चहलपहल भी नहीं देखी?"

"जहांपनाह के सो जाने के बाद नहीं।"

"तुम कह सकते हो मैं तमाम रात सोता रहा?"

"जी हां हुजूर मैं कई बार देख गया हूँ।"

"और बेग़म भी?"

"जहां तक मेरा ख्याल है जहांपनाह बेग़म अपने ख्वाबगाह में सोती रहीं हैं।

बादशाह और बेगम ने एक दूसरे की ओर देखा और बादशाह सोच में पड़ गये।

\+ ❀ ❀

"खूब किया ताज, तुम तो मलिका के रूप में जच गईं। और सवाल भी किस शान से किये।"

"और तुमने भी खूब शाहजादा खुर्रम का स्वाँग भरा, युसुफ आह, उन कपड़ों में तुम जंचते थे, मजा आ गया।"

"और तुम, प्यारी ताज, वाह, क्या शान थी।"

"मगर यह तो कहो, यह नाटक किस लिये खेला गया ?"

"दिल्लगी थी। इसके भीतर कुछ राज की बातें हैं।"

"अब्बा को पता लगेगा तो, क्या कहेंगे ?"

"पर पता कैसे लगेगा, उनसे कहेगा कौन ?"

"खैर, तो क्या सचमुच वहां दोनों बादशाह और बेगम नूरजहां थे ?"

"और नहीं तो क्या।"

"जो उन्हें हमारी इस बेअदबी का पता लग जावे तो ?"

"पर पता कैसे लगे ?"

"यह नाटक खेला क्यों गया ?"

"सिर्फ बादशाह को होशियार करने के लिये।"

"इससे क्या होगा ?"

"बादशाह ने यह तो देख लिया कि ऐसी भी एक ताक़त है जो उनसे भी जवाब तलब कर सकती है। अब अगर बादशाह न चेते तो शाहजादा खुर्रम बगावत करेंगे !"

"क्या वे बहुत खूबसूरत हैं ?"

"देखोगी तो रीझ जाओगी।"

"हटो मैं तुम से नहीं बोलती।"

"अच्छा कहो शाहजादे को देखना चाहती हो ?"

"चाहती तो हूं, देखूं तो शैतान कैसा होता है ?"

"देखकर रीझोगी तो नहीं ?"

"फिर वही बात।"

"अच्छा उस बात को जाने दो, पर अगर वह शैतान ही

तुम पर रीझ जाय और तुमसे शादी करने की दरख्वास्त करे ?"

"वह क्यों ऐसा करने लगा ?"

"तुम्हें देख कर भला कौन अपने मन को वश में रख सकता है।"

"बड़े खराब हो तुम।"

"तो कहो अगर शाहजादा ऐसा करे तो ?"

"तो मैं साफ इन्कार कर दूंगी।"

"खैर यह भी मान लिया जाय, मगर तुम्हारे अब्बा अगर मंजूर कर लें ?"

"वे क्यों मंजूर करेंगे ?

"क्यों, कौन बाप है जो अपनी बेटी को हिन्दुस्तान की मलिका बनाना न चाहेगा।"

"तो मैं जहर खालूंगी।"

"देखा जायेगा। अब एक खुशखबरी सुनो।"

"जल्द कहो।"

"आज शाहजादा तुम्हारे अब्बा से मिलने आयेगा।"

"सच ?"

"सच।"

"किस लिये ?"

"तुमसे शादी की दरख्वास्त करने।"

ताज का मुंह सूख गया, वह रोने लगी। युवक ने प्यार से कहा, "रोती क्यों हो ताज, यह तो खुशखबरी है।"

"पर प्यारे यूसुफ, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम क्यों नहीं

अब्बा से कहते । कहे देती हूं, शाहजादे ने ऐसा किया तो मैं जान देदूंगी।"

युवक बड़ी देर तक प्रेम की दृष्टि से युवती को देखता रहा। फिर उसने कहा, "जानेमन, दिल छोटा न करो, मैं भी कोशिश करूंगा । मगर यह नहीं कह सकता कि तुम यूसुफ की गरीब बीवी बनोगी या हिन्दुस्तान की मलिका । चलो घर चलें, धूप हो गई है।"

दोनों चुपचाप लौटे।

मुमताज ने घर आकर देखा, उसके बूढ़े अब्बा जल्दी जल्दी घर की सफाई करा रहे हैं । नौकर, चाकर, लौंडी, सभी इस काम में जुटे हैं।

उन्होंने पुत्री को देखकर कहा, "बेटी, इतनी देर से कहां गई थी? जल्दी से नहा कर कपड़े बदल लो, शाहजादा खुर्रम तशरीफ ला रहे हैं।"

ताज को काठ मार गया। वह बाप से कुछ न कह चुपचाप घर में चली गई।

शाहजादा ने दलबल सहित प्रवेश किया । वृद्ध ने उसे आदरपूर्वक मसनद पर बैठाया । फिर कोरनिश कर हंसकर कहा :

"तो बादशाह सलामत आगरे वापस चले गए?"

"जी हां, उन्होंने और मलिका ने भी रात को कोई बहुत खराब ख्वाब देखा था उसी से जहांपनाह के दुश्मनों की तबियत

Sleeping city

खराब हो गई, ताहम् उन्हें जल्द चला जाना पड़ा।" शाहजादा ने मुस्करा कर कहा।

बूढ़ा खिलखिला कर हँस दिया। उसने कहा, "बहुत मुमकिन है कि इस खराब ख्वाब का बादशाह सलामत पर कोई अच्छा असर पड़े।"

"उम्मीद तो नहीं है—मगर—"

"तो फिर हजरत हमारी तमाम तैयारियां मुकम्मिल हैं। ख्वाजासरा मौत्तरिम खॉ, खलील बेग, जुलकद्र, फिदाई खां, मीर तुगलक हमारे साथ हैं। खानखाना और उसके बेटे दक्खिन से हमारी मदद को आ रहे हैं।"

"तब देर करना फिजूल है। अब्दुल अजीज को पैगाम लेकर बादशाह सलामत के पास भेज दिया जाय और अपने तमाम उजरात अर्जी में लिख दिये जांय।"

"बेहतर, मैं आज ही उसे रवाना कर दूंगा, हां शाही हरावल का सरदार अब्दुल्लाह भी हमसे मिला हुआ है। वह शाही लश्कर का कच्चा चिट्ठा हमें भेज रहा है, और बदले में झूठे सच्चे किस्से गढ़कर बादशाह को सुना देता है। बादशाह उस पर यक़ीन कर लेते हैं।"

"पर मेरा मुद्दा तो सिर्फ यही है कि बेगम का असर सल्तनत पर न रहे। मैं हजरत सलामत के खिलाफ आवाज उठाना नहीं चाहता।"

"हम लोग भी यही चाहते हैं, हजरत शाहजादा।"

"तो फिर जैसा ठीक समझिये कीजिये। हाँ, ताजमहल कहां

है ? अगर इजाज़त हो तो मैं उसे यह तोहफ़ा नज़र किया चाहता हूं। मैं ताज को प्यार करता हूं और चाहता हूं, वह आपकी कोशिशों से हिन्दुस्तान की मलिका बने।" उसने क़ीमती मोतियों का हार वृद्ध के हाथों पर रख दिया।

"शाहज़ादा, इससे ज्यादा ख़ुशक़िस्मती और क्या हो सकती है।" उसने ताज़ को आवाज़ दी, और वह नीची गर्दन किये आ खड़ी हुई।

वृद्ध ने कहा, "बेटी, ये हज़रत शाहज़ादा ख़ुर्रम हैं, इन्हें कोरनिश करो, ये तुम्हें यह तोहफ़ा दे रहे हैं।"

ताज ने दबी नजर से देखा तो उसकी आंखें आश्चर्य से फैल गईं। उसका दिल बांसों उछलने लगा। एक चीख़ उसके मुँह से निकलते निकलते रह गई। उसने काँपते हाथों से हार ले लिया। शाहज़ादा ने मुस्करा कर उसकी तरफ़ देखा।

फिर बूढ़े से कहा, "तो मेरा आज ही रात का कूँच है और अब मुझे तैयारी करना है।" वे उठ खड़े हुये और चल दिये।

ताजमहल जड़वती देखती रह गई। वह सोच रही थी, या ख़ुदा ख़ुर्रम और यूसुफ़ एक ही हैं।

"प्यारी ताज, मुझे बिदा दो, और ख़ुदा से दुआ करो कि सुर्ख़रू होकर लौटूं।"

"मगर आप बड़े बेदर्द हैं, बड़े छलिया हैं, आपने मुझे ठगा क्यों ?"

"प्यारी ताज, माफ़ करो, मगर मैंने तुम्हें कहा न था कि तुम शाहज़ादा पर रीझ कर ग़रीब यूसुफ़ को भूल जाओगी।"

"आह् अगर तुम नहीं खुसरू होते !"

"और शाहजादा खुसरू होने में क्या हर्ज है, दिलरुबा ?"

ताज ने ठंडी साँस भर कर कहा—

"शाहजादा के महल में हजार मुझ जैसी होंगी मगर खुसरू के लिये तो मैं एक ही थी ।"

"ओह, यह न कहो ताज, ज़िन्दगी सलामत है तो ताक़यामत तुम्हें प्यार करूँगा, मरने तक और मरने के बाद भी। और दुनियाँ इस प्यार का सबूत देखेगी और देखती रहेगी ।"

उसने अपने आलिंगन में युवती को भर लिया और उसकी आँसू भरी आँखों पर हजार हजार प्यार देकर घोड़े पर सवार हो अँधेरे में खो गया ।

भोली अल्हड़ युवती देखती रह गई ।

जेन्टिलमैन

कहिए, क्या आपने कभी कोई जेन्टलमैन देखा है ? जेन्टलमैन बीसवीं शताब्दि की न्यामत है। वह बीसवीं शताब्दि का मूर्तिमान अवतार है। वह जन्मजात प्रतिष्ठित जन्तु है—उसके बहुत से हथकण्डे हैं। उसमें अच्छी-बुरी जो भी बातें हैं गुण ही गुण हैं। अवगुण को उसने शब्दकोष से बहिर्गत कर दिया है। वह जगन्वन्द्य महापुरुष है। उसके लिये बीसवीं शताब्दि में सब कुछ गम्य है।

जेन्टलमैन को पहिचानना बहुत कठिन है। पर आप जब किसी आदमी को सिर से पैर तक साहिबी ठाट से भरपूर देखें, जिसकी मूंछें या तो सफ़ाचट हों या दीमक-चट, जो बात-बात में मुस्करा कर नम्रता से 'थैङ्क यू' कहे—स्त्रियों के, खास कर युवतियों के, सामने बाक़ायदा जमनास्टिक की कसरत दिखावे, मुंह से धुआँ उगलता रहे, बस स[illegible] लीजिये, अद-बद कर वही जेन्टलमैन है।

सतयुग के अन्त में सत्तासी हजार ऋषियों [illegible] बीच महाज्ञानी श्रीकाकभुशुण्ड जी महाराज ने जे[illegible] इस प्रकार वर्णन किया था कि ऋषियों, क[illegible] न नाम का जीव जन्म लेगा। वह स[illegible] से

धर्म और नीति का भय न होगा, वह परमेश्वर की शक्ति से इन्कार कर देगा, उसके लिये कुछ भी अशक्य न होगा, वह कामवेशी होगा, वह केवल झूठ बोले ही गा नहीं-झूठे काम को सत्य करके दिखावेगा। उसका शस्त्र फाउन्टेन पेन होगा। लोक-लिहाज से बचने को और शील से आंखों की रक्षा करने के लिये वह सुनहरी कमानी का चश्मा आंख पर चढ़ाये रहेगा। उसका युद्धस्थल दफ्तर होगा। वह काग़ज के घोड़े पर सवार होकर भूमण्डल पर विचरण करेगा। उसकी जमापूँजी सब ज़बान में होगी। वह पराये धन का महायज्ञ करेगा। उसका रक्षा-कवच लिमिटेड कम्पनी होगा। वह अखबारों की तोप से मदद लेगा। उसके पास कुछ भी न होगा, फिर भी वह लाखों रुपये खर्च कर सकेगा। वह क़ानून का पुतला होगा, इसलिए क़ानून उसका कुछ न कर सकेगा। वह महात्यागी और महा-स्थित पूज्य होगा, हानि-लाभ में एकरस रहेगा। हे ऋषियो, वह बीसवीं शताब्दि का एक विभूति-रूप होगा। जो कोई उसका दर्शन करेगा या जिसका उससे सम्बन्ध होगा, उसका महा-कल्याण हो जायगा।

२

दिल्ली स्टेशन के कपूर के हिन्दू रेस्टोरी में एक जेन्टलमैन बैठे मुंह से धुँआ उगल रहे थे। इनके आगे ब्रान्डी का गिलास और बर्फ, सोडा आदि सामान धरा था जेन्टलमैन महाशय छत पर सरसराते पंखे पर नजर जमाये धुँआ फेंक कर मानों पंखे पर जादू सा कर रहे थे।

थोड़ी देर बाद तीन व्यक्तियों ने स्टोरों में प्रवेश किया। जेन्टलमैनने फुर्तीसे उठकर उनमें से एक व्यक्ति की ओर हाथ बढ़ा कर कहा:—हलो मिस्टर दास हियर यू आर।

दास ने हाथ मिलाते हुए मुस्कराकर अपने मित्रों का परिचय देते हुए कहा—

"आप मेरे परम मित्र सेठ, लक्ष्मीदास राजोड़िया, औरआप मेरे पुराने सहपाठी डा० सिन्हा साहेब!"

जेन्टलमैन ने बारी बारी से दोनों से हाथ मिला कर कहा—आप साहबान से मिलकर अजहद खुशी हुई, बैठिये।',

सबके बैठने पर जेंटलमैन ने बैरा से संकेत किया आनन-फानन चाय-केक-टोस्ट-अण्डा और न जाने क्या क्या टेबिल पर चुन दिया। तीनों दोस्त हाथ साफ करने लगे। सिर्फ सेठ जी कोरे रह गये। बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने किसी वस्तु को नहीं छुआ।

बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। मिस्टर दास ने कहा 'मेरे परम मित्र सेठ साहेब को इधर शेअर और रुई में बहुत नुकसान हुआ है। ये बम्बई के करोड़पति व्यापारी हैं। इन्हें आप कोई ऐसी युक्ति बताइये कि पौ-बारह हो जाय।' जेन्टलमैन ने चश्मे के भीतर से पहले सेठ जी को और फिर मिस्टर दास को घूर कर, एक घूंट चाय का पीकर कहा,—यह कौन मुश्किल बात है? साहबान, मैं एक जेन्टलमैन हूँ और आप जानते हैं, जेन्टलमैन दोस्तों के लिए जान को भी कुछ चीज नहीं समझते।

मिस्टर हाल— बेशक, आप इस वक्त सेठ जी को कोई ऐसी युक्ति बतावें कि कुछ लाभ हो। सेठ जी आप से कभी बाहर नहीं हो सकते।

जेन्टलमैन ने गम्भीर होकर कहा— वाह! यह भी कोई बात है, क्या दोस्तों से भी मुआवजा लिया जायगा।

सेठ जी ने दाँत निकाल कर कहा— इस में मुआवजे की क्या बात है? पर मित्रों की शक्ति भर सेवा करना भी मित्रों का काम है।

जेन्टलमैन ने शिष्टाचार की आवश्यकता प्रकट करने के बाद कहा— खैर तो आप एकदम कोई बड़ी रकम कैश में चाहते हैं या माहवारी आमदनी बढ़ाना चाहते हैं?

सेठजी जवाब देने में संकोच करने लगे इतने में डा० सिन्हा ने कहा— अजी दोनों, और जरा इस दोस्त का भी ख्याल रखिए। सेठ जी को बड़ा और मेरे लिए एक छोटा सा नुस्खा तजवीज कर डालिए। सिन्हा साहब यह कहकर हँस दिये, परन्तु जेन्टलमैन महाशय कुछ देर तक गम्भीरता से सोचते हुए बोले — आपने कहा था न कि आपकी बम्बई में काफी जायदाद है?

'जी हाँ, एक कपड़े का मार्केट मेरी निजू सम्पत्ति है। परन्तु उसके किराये की आमदनी बहुत कम है।

'कम? अजी बम्बई में किराया कम? आप यह क्या फर्माते हैं?'

'शायद आपको मालूम नहीं कि बम्बई में एक ऐसा क़ानून बना हुआ है कि सन् १९१६ से प्रथम के जो किरायेदार हैं, उन्हें न मालिक निकाल सकता है न किराया बढ़ा सकता है। वे मकान

के मारूसी मालिक बने हैं।' सेठ जी ने गम्भीरता से कहा।

"ठीक, परन्तु सन् सोलह और अब के किरायों में तो जमीन आसमान का अन्तर है ?' जेन्टलमैन ने सेठजी से आंखें लड़ाकर कहा।

'बेशक, सन् १६ में जो मकान ५०) रुपये किराये का था और अब तक है, नया किरायेदार उसके ३००) रु० किराया दे सकता है अफसोस तो यह है कि किरायेदार तो सहस्रों रुपये रिश्वत लेकर दूसरों को मकान किराये पर दे सकते हैं; परन्तु मालिक मकान नहीं ! असल में मालिकों की मौत है ?' यह कहकर सेठ जी ने ठंडी सांस भरी।

जेन्टलमैन ने चाय का घूंट पीते हुए कहा—क्या किसी रीति से भी मकान खाली नहीं कराया जा सकता ?

'एक ही हालत में, यदि मकान को गिराकर फिर से बनाने का म्युनिसिपैलिटी नोटिस दे।'

'हूँ' समझा—जेन्टलमैन ने भृकुटी में बल डालकर सिर हिलाया। फिर कहा—'क्या आपको यक़ीन है कि आप का सब मार्केट खाली हो जाय तो आपको नये किरायेदार तुरन्त मिल जायेंगे ?'

'वाह ? मिल जायेंगे क्या ? तुरन्त मेरी ८० हज़ार रु० महावारी की आमदनी बढ़ जायगी।'

'८० हज़ार रु० की ?'

'जी हां।'

कुछ देर में जेन्टलमैन ने सोच कर कहा—'क्या आप एकाध दूकान मुझे दे सकते हैं ?"

'मैं आपको तीन दूकानें दे सकता हूँ, वे मेरी अपनी दूकानें हैं।'

'क्या वे कपड़े की हैं ?'

'जी हां ?'

'उनमें कितना माल है ?

'लगभग एक लाख रुपए का। हम लोग गोदाम अलग रखते हैं।'

'ठीक, आपको अगले वर्ष मार्च महीने से वह ८० हाजार रु० माहवार की नई आमदनी मिलने लगेगी ?'

'क्या आप सच कह रहे हैं ?'

'झूठ से फायदा ?'

'यदि ऐसा हुआ तो मैं आपको नक़द १० लाख रु० दूंगा।'

जेन्टलमैन ने हंस कर कहा– देखा जायगा। हां, आप एक मुश्त भी तो कुछ रक़म चाहते हैं !'

'जी हाँ चाहता तो हूँ।'

'एक करोड़ रु० काफी होगा ?'

'क्या आप मज़ाक कर रहे हैं ?'

'नहीं, यह रुपया आपको आज से तीन मास बाद मिल जायगा।'

सब मित्र आश्चर्य-चकित थे। जेन्टलमैन ने चाय का प्याला आगे को सरका कर उठते हुए कहा –अच्छा अब गुडबाई, मैं आपको एक हफ्ते में बम्बई में मिलूंगा, मि० दास भी साथ होंगे और मिस्टर सिन्हा, आपका छोटा सा नुस्खा भी वहीं लिख दिया जायगा।

जेन्टलमैन सबको आश्चर्य-सागर में गोता लगाते छोड़, सब से हाथ मिला, मुस्कराते हुए चल दिये। तीनों मित्र भी अपनी राह लगे।

३

एक सप्ताह बाद चारों मित्र बम्बई में सेठ जी के एकांत कमरे में बैठे थे। चाय और जलपान उनके सम्मुख था। सब की दृष्टि जेंटलमैन के मुख पर थी। जेन्टलमैन ने गम्भीर मुख-मुद्रा से कहा—देखिए, सेठजी, आप क्या सोलह आने मेरा विश्वास करते हैं?

'करता हूँ।'

'तब आप वचन दीजिए कि मैं जो कहूँगा आप करेंगे।

'ऐसा ही होगा।'

"मैं आशा करता हूँ कि हमारे दोनों मित्रगण भी हमारे उद्योग में सम्मिलित रहेंगे और लाभ उठावेंगे?"

दोनों ने उत्सुकता से कहा—अवश्य।

जेंटलमैन ने मुस्करा कर कहा—डा० सिन्हा साहेब का छोटा सा नुस्खा इसी में बन जायगा।

डाक्टर ने हंस कर कहा—यह तो बहुत ही अच्छी बात है।

'खैर, तो आप तैयार हैं, मैं काम शुरू करूं?'

'कीजिये।'

'बहुत अच्छा। अपनी वे तीनों दुकानें मय माल के मेरे दोस्त मि० दास और डा० सिन्हा को बेची कर दीजिए। रु० भरपाई की रसीद दे दीजिए और समझ लीजिए कि यह आपका

एक लाख रु० जल कर खाक हो गया। कहिए आपको पशोपेश तो नहीं ?"

सेठ जी घबराकर जेन्टलमैन की तरफ देखने लगे। उन्होंने कहा—"आप अपना उद्देश्य तो कहिए ?"

"जनाब, मैं किसी के सामने कभी कैफियत नहीं देता।"—वे अपना टोप सम्हाल कर उठने लगे।

सेठ जी ने अनुनय से कहा—आप तो नाराज हो गये। आप जानते हैं, लाख रु० की जोखिम है। सोचने की जरूरत है।"

"आप करोड़ों योंही पैदा करना चाहते हैं, जाइए सोच-सोच कर जान खपाइये ! मैं चलता हूँ।"

सेठ जी ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"अच्छा मुझे मंजूर है। और कहिए ?"

जेन्टलमैन ने जेब से एग्रीमेन्ट का ड्राफ्ट निकाल कर कहा—इस पर दस्तखत करके यह काम ठीक कर दीजिए। "सेठ जी ने दस्खत कर दिये।

उस काग़ज़ को जेब में डाल कर जेन्टलमैन ने कहा—"यह एक काम हुआ। अब दूसरा काम यह कि आप तमाम मार्केट का १ करोड़ रु० का आग का बीमा कर डालिए।

"सेठ जी ने भयभीत दृष्टि से जेन्टलमैन को घूर कर कहा—"आपका इरादा क्या है ?"

"यही कि मैंने जो कहा है उसे पूरा कर दिखाऊं। कल मि०

दास आपसे दूकान का चार्ज लेने जावेंगे और कल ही आप बीमा की भी कुल कार्यवाही खतम कर डालेंगे।"

सेठ जी ने स्वीकार किया।

जेन्टलमैन ने भेद-भरी दृष्टि से देखते हुए सेठ जी से कहा—"डॉ० सिन्हा की राय है कि इधर आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता, आप सपरिवार काश्मीर एक दो मास के लिए चले जाइए। कल आप सब काम खत्म करके परसों फ्रन्टियर मेल से रवाना हो सकते हैं।"

सेठ जी ने घबराकर कहा—"स्वास्थ्य तो मेरा बहुत अच्छा है, और मैं अभी पंजाब से आ रहा हूं।"

जेन्टलमैन ने तीखी वाणी से कहा—"परन्तु डॉक्टर की राय के मुकाबले आपकी राय कुछ गिनती में नहीं है। फिर आप मुझे वचन दे चुके हैं। आपको उसका पालन करना चाहिये।"

सेठ जी ने धीमे स्वर में कहा—"आपका इरादा मैं कुछ २ समझ गया हूँ। आप बड़े खतरे का काम कर रहे हैं।"

"समझ गये हैं तो अच्छी बात है, खतरों से हम नहीं डरते। आपको खतरों से दूर रखने ही के लिये मैं आपको भेज रहा हूं।"

"अच्छी बात है, मुझे स्वीकार है।"

जेन्टलमैन उठ खड़े हुए, तीनों मित्र भी उठे। जेन्टलमैन ने हाथ बढ़ाते हुए सेठ जी से कहा—अब स्टेशन पर परसों आपसे मुलाकात होगी। बीमा के कागजात अपने सॉलीसीटर को दे जाइये और एक परिचय-पत्र मेरा उनके नाम लिख कर

मुझे देते जाइये, आवश्यकता होने पर मैं उनसे मिल लूंगा।"

इतना कह मित्रों सहित जेन्टलमैन विदा हुए। सेठ जी घबराहट के मारे कमरे में टहलने लगे।

४

तीनों मित्र एक होटल के एकान्त कमरे में बैठे थे। दास ने कहा—"क्या आज ही ?"

"हां, तुमने कहा न कि दूकान उबरानी का ?॥ लाख रुपया आ गया है।"

"पर वह उघरानी का नहीं, आढ़तियों की रकम है।"

"ओह ! इससे कोई बहस नहीं, इसके पैमेंट दूकान कर देगी। लाओ, वे रुपये कहां हैं ?"

दास ने नोट निकाल कर सामने रख दिये। उसमें से १० हजार के नोट मि० सिन्हा के हाथ पर रखते हुए मि० जेन्टलमैन ने कहा—'मि० सिन्हा, यह आपका वह छोटा सा नुस्खा है।' और ४० हजार मि० दास को देकर कहा—'यह आपका ८॥ महीने का वेतन है।' शेष १ लाख जेब में रख कर बोले—"दूकान में माल कितना होगा ?"

'८० हजार का होगा ही।'

'जाने दो। हां, तो मि० सिन्हा मतलब समझ गये न ? बिजली का करेन्ट ऑफ करके बीच में तार का काट कर नङ्गा कर दो और परस्पर मिला दो।'

'यह तो बहुत मामूली काम है'—सिन्हा ने कहा।

'बेशक, परन्तु यह लीक लकड़ी के सिकूत के ऊपर करना होगा, जिससे तार जलते ही आग झट से बैठ जाय।'

'ऐसा ही होगा।'

'तब आप जाइए और अपना काम खतम करके चले आइये।'

'क्या स्विच स्टार्ट कर आऊं?'

"तब क्या? सब कुछ आज ही होना चाहिये और मि० दास, तुम अपनी पार्टी को तैयार रक्खो। याद रक्खो यह मामूली घटना न होगी, शहर में तहलका मच जायगा।'

मि० दास ने भयग्रस्त होकर कहा-"मि० जेन्टिलमैन, सावधानी से सब बातों पर विचार करलो, जल्दी न करो। बड़ा भयानक काम है।"

मि० जेन्टिलमैन ने उठते हुए कहा-"अब हम तीनों रात के १२॥ बजे बाजार के मोड़ पर मिलेंगे। उस समय तक वहाँ आदमियों की भारी भीड़ लग चुकी होगी। ठहरा, जगह ठीक करनी चाहिये। वह जो रेस्टोरां है, वहीं। पर खबरदार, हम लोग पृथक् २ टेबिलों पर बैठे होंगे।

तीनों मित्रों ने नेत्रों में विचार-विनिमय किया, और तीनों अपनी-अपनी राह लगे।

५

कपड़े के मार्केट में आग लगना एक प्रलयङ्कारी दृश्य था। घनी बस्ती के बीच में यह मार्केट था। कुल मार्केट में ८०० कपड़े की दूकानें थीं, मनुष्य और माल से भरपूर-उनमें करोड़ों का माल भरा था। मार्केट में आग लग जाने की खबर बात की बात में नगर भर में फैल गई। सभी स्थानों की आग बुझाने वाली गाड़ियां आ गई। नगर भर की पुलिस और घुड़सवार

पल्टनों का बन्दोबस्त हो गया। परन्तु मि० दास की पार्टी का सब भेद प्रकट था। वह ठीक स्थानों पर पहुंच गई थी। तिजोरियों को तोड़ने की व्यवस्था उनके साथ थी और जब सर्वत्र हाहाकार मचा था, फायर ब्रिगेड वाले पुलिस और सेना की सहायता से माल को निकालने और आग बुझाने में जान जोखिम सह रहे थे, मि० दास की पार्टी अनगिनती नोटों के गट्ठर बटोर रही थी। पास के रेस्टोरां में तीनों दोस्त क्षण-क्षण में सूचना पा रहे थे।

आग बुझाने में आठ दिन लगे। सारा मार्केट जल कर राख हो गया। दूकानदार हाय करके बैठ रहे। जिनका बीमा था उन्हें कुछ सन्तोष था। यह दारुण समाचार सुनते ही सेठ जी काश्मीर से भाग आये। खाक स्याह मार्केट को देखकर जार २ रोने लगे। लोगों की भीड़ चारों तरफ जमा थी! कोई कुछ कह रहा था कोई कुछ। सेठ जी पर सब करुणा की कोर से देख रहे थे। लोगों के मन में दया का समुद्र उमड़ रहा था। सहानुभूति के शब्दों की बौछार हो रही थी। सेठ जी सुबकियां ले रहे थे। तीनों मित्र बगल में खड़े थे। मि० जेन्टलमैन मुस्कराते हुए सिगरेट पी रहे थे। एकाएक उन्होंने सिगरेट फेंक कर सेठ जी का कन्धा छूकर कहा—'अब रंज-फिक्र छोड़िये सेठ जी, आगे की बात सोचिये। जो होना था हो गया।' उन्होंने एक भेद-भरी दृष्टि सेठ जी पर डाली। चारों दोस्त चले आये। घर के एकान्त कमरे में बैठ कर सेठ जी ने कहा—"अब?"

'अब क्या—१ करोड़ रुपये बीमे का वसूल कर लीजिये

और झटपट नये डिजाइन का एक भव्य मार्केट बनवा डालिये। आनन-फानन भर जायगा।'

इसके बाद कुछ गोपनीय परामर्श करके मिस्टर जेन्टलमैन बाहर आये।

६

नया मार्केट बन गया। उसमें सिर्फ ४० लाख रुपया खर्च हुआ। ६० लाख रुपया सेठ जी को बच गया। इधर एक लाख रुपया महीना किराया आने लगा। मि० जेन्टलमैन को इस धन्धे में लूट की बेशुमार दौलत के अलावा १० लाख रुपया सेठ जी से इनाम मिला। अब वे गुड़ पर चींउटे की भांति झपक रहे थे। सेठ जी इनकी योग्यता के कायल थे। दोनों दोस्त भी चूर-चार से पेट भर रहे थे।

चारों दोस्त बैठे थे। नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ रही थीं। मेज पर चाय और खाने की बेशुमार चीजें धरी थीं। सेठ जी बोले—"मिस्टर जेन्टलमैन, कुछ धन्धा नया किया जाय।" जिससे १०–२० लाख रुपया फोकट में पैदा हो जाय।

मिस्टर जेन्टलमैन ने हँस कर कहा—कौन बड़ी बात है। यह रुपया कब तक आपको चाहिये ?

'ज्यादा से ज्यादा दो महीने में। गर्मी शरू होने पर तो काश्मीर जाने का इरादा है।'

'अच्छी बात है।' उन्होंने जेब से फाउन्टेनपेन निकाल कर नोटबुक का एक पन्ना फाड़ कर कहा—"सेठ जी, कल्पना कर लीजिये कि हम लोग एक लिमिटेड कम्पनी बनाने जा रहे हैं, उसका मूलधन ५० लाख होगा। उसमें रेशम काता जायेगा।

यह बड़े मुनाफे का धन्धा है। आप सेठ जी १० लाख के शेअर खरीद लीजिए।"

सेठ जी ने अचकचा कर कहा—"क्या मैं ?"

'जी हाँ'—फिर उन्होंने नोटबुक में कुछ लिखते हुए कहा—और मिस्टर दास ५-५ लाख का हिस्सा हम तीनों का हुआ। लो, आधे शेअर तो बिक गए। ५ लाख को रिजर्व रखते हैं, सिर्फ २० लाख के बेचते हैं। १०० के शेअर होंगे, तीन क़िस्तों में रुपया लिया जायेगा। एक चौथाई पेशगी। निकालिए चिक, एक चौथाई रुपया अभी दे दीजिये।

मिस्टर जेन्टलमैन अपनी नोटबुक में लिखते जाते थे और बात करते जाते थे। दोनों मित्र हैरान थे। सेठ जी टकटकी देख रहे थे। मित्रों को पशोपेश करते देख मि० जेन्टलमैन ने कहा—"यारों घबराते क्या हो, आप लोगों की एक पाई भी तो खर्च नहीं होगी।"

उन्होंने स्वयं १। लाख का चिक काट कर सामने फेंक दिया। सेठ जी और मित्रों ने भी चिक काट दिये। ६। लाख के चिक हो गये। उन्हें रद्दी कागजात के टुकड़ों की भांति मि० दास के आगे फेंक कर उन्होंने कहा—"मि० दास, आप इस कम्पनी के मेनेजिंग डाइरेक्टर हुए। हजार रुपये माहवारी आपको तनख्वाह मिलेगी। आप मेरे सॉलीसीटर के यहां चले जाइये, कुल कागजात तैयार करके कल ही कम्पनी रजिस्ट्री करा देंगे। फिर आप एक अच्छी जगह पर ऑफिस किराये पर ले डालिए। अब हम पहिली डाइरेक्टरों की मीटिंग होने पर फिर मिलेंगे।"

मि० जेन्टलमैन उठ खड़े हुए। दोनों मित्र भी उठ चले।

मिस्टर दास से चलती बार उन्होंने कहा—"घर पर आना, मैं सब समझा दूँगा।"

(७)

'धनजी सिल्क स्पिनिंग कम्पनी लिमिटेड' का पाटिया उसी सप्ताह दफ्तर में लग गया। आवश्यक मेज कुर्सियां भी बिछ गईं। कागज़ात भी छप गये। ऑफिस में मिस्टर दास और मिस्टर जेन्टलमैन बैठे थे। थोड़ी देर में डाक्टर सिन्हा भी तशरीफ़ ले आये।

उनके आते ही मि० जेन्टलमैन ने कहा—"मिस्टर सिन्हा, अब आपको सब कुछ करना पड़ेगा। सुनिये, आपको ३०-४० आदमी निन्तर शेअर बाज़ार में भेजने पड़ंगे जो चाहे भी जिस भाव पर हमारी कम्पनी के शेअर खरीद लावेंगे। मि० दास आपको ५० हज़ार रुपये रोज़ देंगे। वे कम से कम ५० हज़ार रुपये रोज़ के शेअर खरीद लावेंगे।"

'आप समझ गये न, मि० दास ?'

'समझ तो गया, परन्तु रोज ५० हज़ार रु० दूँगा कहां से ? और कब तक ?'

मिस्टर जेन्टलमैन ने मुस्कराकर कहा—"वाह, ये रुपये रोज़ ही आपके पास लौट आवेंगे—दस-पांच की कमी-ज्यादती रहेगी ?"

'यह किस तरह ?'

"इस तरह कि जब मि० सिन्हा के आदमी शेअर-बाज़ार में अपनी कम्पनी के शेअरों की ख़रीद करेंगे, शेअर बाज़ार वाले अवश्य ही आपको फ़ोन करके शेअर मँगाकर रखेंगे तथा बेचेंगे-

वे सब रु० आपको मिलेंगे। सिर्फ आप उन लोगों को दलाली देंगे। यह आप उनसे तय कर लीजिएगा।"

मि० दास हँसकर बोले—"यह तो समझ गया। परन्तु इससे हमें क्या लाभ होगा?"

"यह खेल १६-२० दिन चलता रहेगा। दिन-दिन नये-नये ग्राहक मि० सिन्हा बाजार में भेजते रहेंगे। जब बाजार में यह प्रसिद्ध हो जायगा कि अमुक कम्पनी के शेअरों की बाजार में बहुत खपत है, तब आप बाजार में शेअर भेजने से इन्कार कर देना, और प्रकट कर देना कि अब बेचने के लिये शेअर नहीं हैं।"

'इसके बाद?'

'इसके बाद, मि० सिन्हा के आदमी तो बाजार में सरगर्मी से फिरते ही रहेंगे—वे १०५ तक में शेअर खरीद करने को तैयार हो जावेंगे।'

'तब?'

'बस, ज्योंही शेअर का भाव बोर्ड पर चढ़ा और बाहरी ग्राहक टूटे। लोग मूर्ख तो हैं ही। यह कोई नहीं पूछता कि कौन कम्पनी कहां है, क्या हालत है। बस जिसके शेअर की दर बढ़ गई उस पर टूट कर पड़ते हैं। बस हम लोग आपस में ही ११०-१२५ तक बाजार-भाव कर देंगे। और जब देखेंगे कि बाहरी आदमी खरीद रहे हैं, अपने तमाम शेअर बेच डालेंगे।'

मि० दास की आंखें चमकने लगीं। उन्होंने कहा—"बाहरी आदमी क्या अन्धे हैं जो बिना देखे—भाले अपना रुपया फेंक देंगे?"

"अजी, आप अन्धे कहते हैं, मैं कहता हूं वे उल्लू के पट्ठे हैं। आपको यह भेद मालूम नहीं। यह तो आप जानते हैं कि बम्बई का सट्टा जगद्विख्यात है और सब लोग जानते हैं कि बम्बई के अमीरों का एकमात्र धन्धा सट्टा है। जो लोग जरा अपने को चालाक समझते हैं वे बम्बई में आकर खर्च चला लेने की फिक्र में रहते हैं। यहां के यार दोस्त उन्हें रुई, सोना या शेअर का सट्टा करने की सलाह देते हैं। शेअर के बाजार में यह आम क़ायदा है कि कम्पनी क्या है, है भी या नहीं, इसे कोई नहीं देखता। जिस कम्पनी के शेअर का बाजार में भाव बढ़ गया, लोग समझते हैं वह खूब नफा कमा रही है, उसी के शेअर आंख बन्द कर खरीद लेते हैं। बाजार में मि० सिन्हा ऐसी रेल पेल मचा देंगे कि हमारी कम्पनी का शेअर वहां गया नहीं और ऊंचे भाव में बिका नहीं। बस लोग हाथों-हाथ खरीदने लगेंगे और हम अपने अपने शेअर बेंच डालेंगे।"

मि० दास ने आंखें फाड़कर मि० जेन्टलमैन को घूरकर देखा और कहा—"और कम्पनी का काम कब स्टार्ट होगा? मशीनरी कहां से आयेगी। बिल्डिंग भी तो बनेगी?"

मि० जेन्टलमैन ने कुटिल हास्य से कहा—"उसकी कोई जरूरत नहीं। ज्योंही हमारे शेअरों का रुपया हाथ लगे, कम्पनी दिवालिया हो जायगी।"

मि० सिन्हा उछल पड़े। उन्होंने कहा—"वन्डरफुल। मैं सब कुछ समझ गया। मि० दास, मैं तुम्हें सब समझा दूंगा? आओ, हाथ मिलाओ दोस्त।"

तीनों ने हाथ मिलाया, परस्पर भेद-भरी दृष्टि से देखा और अन्तरङ्ग सभा विसर्जित की।

(८)

नीलगिरि पर्वत की सभ्य श्रेणी पर चारों दोस्त एकत्रित थे। अंगरेजी होटल के एक ठाटदार कमरे में चारों दोस्त टेबिल पर बैठे थे। सेठजी ने कहा–मि० जेन्टलमैन, आपकी सूझ बूझ का मैं क़ायल हो गया। आपका दिमाग़ सचमुच हीरा है।"

मि० जेन्टलमैन ने कहा—"सेठजी, आपने विश्वास किया और फल पाया। याद रखिए, मैं एक जेन्टलमैन हूं, जो कहता हूं, कर दिखाता हूँ।"

'बेशक आप एक सच्चे जेंटलमैन हैं।' सेठजी ने विश्वस्त स्वर में कहा।

मि० जेंटलमैन ने सिगरेट का कश फेंक कर कहा—कहिए मि० दास, इस सौदे में कितना नफ़ा रहा?

'दो लाख सेठजी को मिले और १ लाख २२ हजार हम तीनों में से प्रत्येक को मिले।'

'अब मेरा प्रस्ताव है, सेठ जी, कि ये तो छोटे-मोटे व्यापार हुए। आप चाहें तो मैं करोड़ों रुपया आपके चरणों में डाल सकता हूं।"

"मैं हर तरह आपके अधीन हूं। आप कहें तो कुएं में कूद पड़ूं।"

वाह, क्या मैं आपको कुएं में उतारूंगा?'—जैन्टलमैन जोर से हँस पड़े। इसके बाद उन्होंने कहा—"सुनिए, इस समय देश-भक्ति और देश सेवा की आवाज़ देश में गूंज रही है।' तीनों मित्र ध्यान से सुनने लगे।

वाले थे। बाकी दोनों मित्र भी उन्हीं के चेले थे। मि० सिन्हा बैंक के एजेन्ट बना दिये गये थे। उन्हें कमीशन में जितना रुपया मिलता था उतना कभी सात पीढ़ी में भी न मिला था।

सेठ जी ने पूरा रु० दे दिया था, उसी से बैंक खड़ा हुआ था। तीनों मित्रों के पास जो कुछ था दे दिया था, पर वह २-२ लाख से भी कम था। बाकी रुपया वे अपनी समस्त आमदनी से पूरा करते रहेंगे, इसका एग्रीमेन्ट था।

बैंक शुरू ही से नफा बाँटने लगा था, यह देख कर दोनों मित्रों को यह तलाबेली पड़ी थी कि अधिक से अधिक नफा प्राप्त करने को जल्द से जल्द अपना रुपया जमा कर दें। सेठ जी को भी यही पट्टी पढ़ाई गई थी कि नफा जो मिले उसके अधिकाधिक शेअर खरीदते जाइए, जिससे बैंक ही आपका हो जाय। और सेठ जी के दिमाग में यह बात जच गई थी।

१०

तीन साल बीत गए। बैंक की अब कई शाखाएं खुल गई थीं। और उसकी साख बहुत बढ़ गई थी। इस बीच में मि० जेन्टलमैन ने अपने बहुत से हिस्से बेच डाले थे। इसके सिवा उन्होंने बैंक से बहुत सा रुपया कर्ज ले रखा था! यह सब रुपया उनके हिस्सों की जमानत पर था। क्योंकि वे बैंक के कर्ताधर्ता थे। वे स्लिप लिख कर बैंक भेज देते, उतना ही रुपया वे पा जाते। इस रुपये से उन्होंने अपनी स्त्री के नाम बेशुमार जायदाद खरीद ली थी।

माहवारी वेतन के सिवा उनकी और भी आमदनी थी। एक रियासत को आपने बैंक से २० लाख रु० कर्जा दिलवाया।

स्टेट की १५ साल की तमाम तहसील बैंक ले आया की। पूरे लाभ का सौदा था—इसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ा। परन्तु डाइरेक्टरों को राजी करने के पारिश्रमिक स्वरूप आपको १ लाख रुपया इनाम या घूस मिल गया। इस प्रकार की आमदनी आपको होती ही रहती थी।

धीरे-धीरे बैंक की भीतरी हालत में परिवर्तन हो रहा था। अनेकों मदों में होकर बैंक का बेशुमार रुपया मि० जेन्टलमैन के घर पहुंच चुका था। सेठ जी के जाली दस्तखतों से बैंक के डाइरेक्टरों की काल्पनिक बैठकों के निर्णयों पर बहुत से महत्वपूर्ण काम कर डाले गये थे। अब सेठ जी से मि० जेन्टलमैन को भारी खतरा था, चाहे जब उनका भण्डाफोड़ हो सकता था। मि० जेन्टलमैन ने अन्त में सेठ जी को दुनियां से उठा डालने का निश्चय कर डाला।

११

रात के दस बजे थे। मि० दास और मि० सिन्हा के साथ मि० जेन्टलमैन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर बातचीत कर रहे थे। बातचीत बहुत गम्भीरतापूर्वक हो रही थी। सब बातें सुन कर मि० सिन्हा ने कहा—"लेकिन दोस्त यह निहायत खतरनाक काम है और अगर भेद खुल जायगा तो हम तीनों आदमियों को कालापानी हुआ रखा है और मैं तो अवश्य ही फांसी पर लटकाया जाऊंगा।"

मि० जेन्टलमैन ने कहा"—ये आप बिल्कुल बेवकूफी की बातें करते हैं। भेद खुलेगा ही कैसे ? हम तीन ही तो आदमी इसको जानते हैं। तीनों ही इस खतरे के जिम्मेदार हैं। फिर

खोलेगा कौन ? फिर इससे पहले जो कार्यवाहियाँ हुई हैं उनके भेद क्या खुले हैं ?"

मि० सिन्हा ने घबरा कर कहा---"लेकिन मि० जेन्टलमैन ! अगर आप मुझे इस बार बरी रखते तो भला होता।"

जेन्टलमेन ने क्रुद्ध होकर कहा---"तब क्या आप समझते हैं कि लाखों रुपयों की सम्पत्ति यों ही हड़प की जा सकती है ? आप का यह साहस कि आप मेरे हुक्म की अदूली करें। मैं जो कहता हूँ वह आपको करना पड़ेगा।"

इसके बाद उन्होंने मि० दास की तरफ मुखातिब होकर कहा-मि० दास ! जो दवाई आपको मि० सिन्हा देंगे उसको इस्तेमाल करने की जिम्मेदारी आपके ऊपर है। आपको मालूम है कि सेठ जी बीमार हैं। आप आज रात भर उनके पास रहिए। और ठीक तौर पर दवा वगैरा देते रहिए। मि० सिन्हा आपको दो प्रकार की दवाइयाँ देंगे। एक पीने की और एक मालिश करने की। आप मालिश करने की दवाई चतुराई से इस ढंग से रख दीजिए कि जब आप उन सेठ जी की स्त्री को दवाई देने की हिदायत करके सो जायँ तो वह मालिश करने की दवाई सेठ जी को पिला दे। देखिए ऐसा करने से आपके ऊपर कोई इलजाम भी नहीं आ सकता। लोग यह समझेंगे कि महज़ मामूली गलती हो गई और वह भी उनकी स्त्री के हाथ से।"

मि० दास ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया।

मि० जेन्टलमैन ने खड़े होकर कहा-"तो मि० सिन्हा, आप सेठ जी को देख आइये और दवा मि० दास के हाथ भेज दीजिए। मि० दास ! आप खबरदार रहिए कि आपका यह

पूर्णा जैसी महिला इस कच्ची आयु की मितभाषिणी दक्षिणा का जो इतना आदर करती है, उसका कारण है कि दक्षिणा के गौरव को उसने पहचान लिया है। वह जानती है. यह कुसुम-कोमल बालिका कैसी ज्ञानवती है, वह स्त्रीत्व के तेज से परिपूर्ण है। उसमें कितना गौरव है।

अन्ना दीदी को दक्षिणा की माँ ने बुला भेजा था। अपने मन की व्यथा और आग दोनों ही उसने रो-रोकर अन्ना को बता दी। उसने सुबिकियां ले-लेकर कहा, "अन्नपूर्णा! भला तुम्हीं कहो, मेरी बेटी के साथ यह अन्याय, क्या मैं चुपचाप सह लूं? तुम तो बहुत पढ़ती हो, सभा-सोसाइटियों में जाती हो, स्त्रियों के अधिकारों और स्वार्थों की बड़ी हिमायती हो, क्या मेरी दक्षिणा उस जानवर का ऐसा अन्याय चुपचाप सहन कर लेगी? अरे, मेरी फूल-सी बेटी पर सौत लाया है, सौत!"

अन्नपूर्णा को वृद्धा का अभियोग समर्थन-योग्य प्रतीत हुआ। वृद्धा की मांग सर्वथा उचित थी। दक्षिणा की ओर से क्षतिपूर्ति और निर्वाह का मुकदमा अवश्य होना चाहिये। अन्नपूर्णा उससे सहमत हुई। परन्तु जब उसने दक्षिणा की 'नहीं' को 'हाँ' में परिणत करने का मन ही मन संकल्प कर लिया, उसने वृद्धा से एक शब्द भी नहीं कहा, चुपचाप उठकर दक्षिणा के पास गई।

दक्षिणा पिता की बैठक साफ करने में लगी थी। इधर-उधर बिखरी हुई पुस्तकों, कागजों और सामग्री को सहेज कर ठिकाने से लगा रही थी। उसकी साड़ी मैली थी, बाल रूखे थे और ओंठ सूख रहे थे। पिता को जलपान कराकर जब वह मां

को किसी भी तरह खाने के लिए राजी न कर सकी तो उसने स्वयं भी निराहार रहने का तय कर लिया।

अन्ना ने आते ही कहा, सुन "दच्छिणा, यह तो मैं जानती हूं कि पुरुष के भोग की जो वस्तु हैं उनकी जाति की तुम नहीं हो......"

"यही तो दीदी, इसी से तो मैं सोचती हूँ, इसमें उनका ऐसा कुछ अपराध भी तो नहीं है, पर बाबू जी यह बात समझते ही नहीं हैं!"

"फिर भी मैं तुमसे यह पूछने आई हूं कि आखिर लोगों की निन्दा-प्रशंसा की अवज्ञा करने का तेरा साहस, कहां तक स्तुत्य है!"

"नहीं दीदी, साहस नहीं। तुम तो जानती ही हो कि मैं एक कमजोर और असहाय नारी हूं, मैंने कभी भी अपने को शक्तिवान् समझ कर घमण्ड नहीं किया।"

"यही तो। पर यह तो तुम जानती ही हो कि नारी के लिये पुरुष को पाना कितना कठिन है, इसी से तो पुरुष को पाकर स्त्रियां सौभाग्यवती कहाती हैं।"

"क्यों नहीं, मैं यह भी जानती हूं कि नारी के लिए पुरुष को पा जाना जितना कठिन है, पुरुष के लिए स्त्री को पा जाना उतना ही आसान है।"

"यहां तक तो कुछ हानि नहीं थी दाखी, पर पुरुष को पा जाना स्त्री के लिए जितना कठिन है उतना ही उसका गवा देना ...ी है।"

"है तो, और पुरुष के लिए स्त्री का पा जाना जितना

नहला-धुलाकर बढ़िया वस्त्र पहनाए गए। दही-रोरी का तिलक लगाया, और फूलों का हार गले में पहनाया।

सज-धजकर डिक्टेटर साहब जब बाहर आए, तो वज्र-गर्जन की भांति तीनों नारे बुलंद हुए। एक बढ़िया मोटरकार लोग मांग लाए थे, उसे फूलों से सजा दिया गया था। टर्र साहब धर्मपत्नी-सहित उसमें बैठे, और हज़ारों स्त्री-पुरुषों के जुलूस के साथ पुलिस-कोतवाली की ओर चले।

(४)

ज्यों ही जुलूस निकलकर बाज़ार में आया, खटाखट बाज़ार की दुकानें बंद होने लगीं। पूरी हड़ताल हो गई। थाने तक पहुंचते-पहुंचते जुलूस ५ हज़ार आदमियों का हो गया।

थाने के फाटक पर जुलूस रुक गया। थानेवाले चौकन्ने हो गए। पुलिस के जवानों ने लाठियाँ संभालीं। टर्र साहब फूल-मालाओं से लदे हुए मोटर से उतरे। चुने हुए लीडरों के साथ डिक्टेटर साहब शान से अकड़ते हुए थाने में घुस गए। भीड़-सहित स्वयंसेवक-दल बाहर 'इन्कलाब जिंदाबाद' के नारे बुलंद करता रहा।

थानेदार साहब बैठे ज़रूरी कागज़ात देख रहे थे। डिक्टेटर साहब और लीडर साहबान को इस शान से आते देख उन्होंने बड़े तपाक से उठकर उनसे हाथ मिलाया। कुर्सियां मंगाईं। बैठने पर टर्र महाशय ने मुस्किराकर कहा—"मैंने खुद ही आना मुनासिब समझा।"

दारोगाजी मिलनसार थे। बोले—"बड़ी मिहरबानी की।" इसके बाद उन्होंने एक सिपाही को पान लाने का हुक्म दिया। कुछ देर दोनों पार्टियाँ चुप रहीं।

पान खाने के बाद दारोगाजी ने कहा—"कहिए, मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ।"

"हमें बहुत खु़शी है कि आप इतने खु़शअख़लाक़ हैं। आख़िर तो हमारे भाई ही हैं। आप अपनी ड्यूटी पूरे तौर पर अदा करते हैं, इसका हमें ज़रा भी मलाल नहीं।"

दारोगाजी ने चिंता का भाव मुख पर लाकर कहा—"हमें आप साहबान के भाई कहलाने की इज्जत तो नहीं मिल सकती। अलबत्ता खिदमतगार कह सकते हैं। अमन, अमान क़ायम रखने के लिये हमारी उतनी ही ज़रूरत आपको है, जितनी सरकार को।"

"बेशक, बेशक।" दो-तीन लीडरान बोल उठे—"आप खु़शी से अपनी ड्यूटी कीजिए।"

बात आगे बढ़ती जा रही थी। पुलिस-थाना चौपाल बन रहा था। बेचारे दारोगाजी कुछ मतलब नहीं समझ रहे थे। बाहर भीड़ आफ़त मचा रखी थी। सिपाही क़ई बार भीड़ को हटाने की इजाज़त माँग चुके थे। परंतु दारोगाजी इस इंतज़ारी में थे कि ये लोग कुछ कहें, तो इनके यहाँ आने का कारण मालूम हो।

आख़िर उन्होंने कहा—"आप लोगों के लिये शर्बत मँगाया जाय?"

"जी नहीं, आपकी मिहरबानी है।"

"तो फर्माइए, क्या हुक्म है?"

"हुक्म की इंतज़ारी तो हम लोगों को है।"

"मैं तो कह चुका कि मैं आपका और सरकार का खादिम हूँ।"

"तो इसमें हमें कुछ शिकायत थोड़े ही है।"

"यह आपकी मिहरबानी है।"

थोड़ी देर फिर सन्नाटा रहा।

अंत में एक सज्जन ने खड़े होकर कहा—

"दारोगाजी, आखिर कब तक आप यह शराफ़त का लिहाज रक्खेंगे। अब डिक्टेटर साहब हाजिर हैं। इन्हें गिरफ्तार करके जाब्ते की कार्यवाही कर डालिये।"

दारोगाजी ने थोड़ा लाचारी का भाव बताकर कहा—"मुझे बहुत अफ़सोस है कि जब तक ऊपर से हुक्म न हो, तब तक मैं किसी को गिरफ़्तार नहीं कर सकता।"

"तब बिना हुक्म आपने फोन क्यों किया?"

"कैसा फ़ोन?"

"कि इनका वारँट है। थाने में आकर गिरफ्तार हो जायँ।"

"मैंने फ़ोन नहीं किया।"

"आपने फ़ोन नहीं किया?"

"नहीं।"

"मेरा वारँट नहीं है?"

"नहीं।"

"दर्याफ्त कीजिये, किसी दूसरे सेंटर से किया गया होगा।"

"आप तो मेरे ही हल्के में हैं। यह नामुमकिन है।"

"तब फ़ोन किसने किया?"

दारोगाजी मुस्करा कर बोल उठे—"किसी मसखरे का काम मालूम होता है।" इसके बाद वह ज़ोर से हंस पड़े।

डिक्टेटर साहब अपने साथियों सहित बड़े लज्जित हुये। उन्होंने अपनी फूल-मालाओं पर दृष्टि डालते हुये कहा—"उस बदमाश का पता लगाना चाहिये।"

"अजी, उसे तो इनाम दीजिये। उसी की बदौलत..." दारोगाजी आगे की बात पी गये।

"तब मैं जा सकता हूं?" डिक्टेटर साहब ने पूछा।

"मैं कैसे कहूं?"

पार्टी उठकर चल दी। डिक्टेटर और पार्टी को ज्यों-का त्यों बैरंग वापस आते देख भीड़ ने फिर गगनभेदी इन्क़लाब का नारा बुलन्द किया। सजी मोटर में फिर आप बैठ गये। सत्य बात को प्रकट करने की जरूरत नहीं समझी गई। जुलूस उसी शान से लौटा।

लोग कह रहे थे—"आदमी नहीं शेर है। इस पर हाथ डालने की सरकार जुर्रत ही नहीं कर सकती।"

क्रांतिकारिणी

(१)

गर्मी बड़ी तेज थी। पर क्या किया जाय, मित्र की कन्या के विवाह में तो जाना जरूरी था। तबियत ठीक न थी। छोटे बच्चे को चेचक निकल आई थी। पत्नि ने बहुत ही नाक भौं सिकोड़ी, पर मुझे जाना ही पड़ा। मैं इन्टर-क्लास के एक छोटे डिब्बे में अनमना सा हो कर जा बैठा। मन में तनिक भी प्रसन्नता न थी। बच्चे का ध्यान रह रह कर आता था। लू और धूप दोनों अपने ज़ोर पर थीं, डिब्बे में मैं अकेला था। गाड़ी ने सीटी दी। जो लोग प्लेटफार्म पर खड़े थे लपक कर अपने अपने डिब्बे में चढ़ गये। मैंने देखा, मेरे डिब्बे में भी एक युवती लपक कर सवार हो गई है।

उसकी आयु २०-२२ वर्ष की होगी। वह दुबली-पतली थी। नाक कुछ लम्बी, पर सुडौल थी। होठ पतले और दांत श्वेत और सुन्दर थे। आंखें बड़ी-बड़ी थीं, उनमें कुछ अद्भुत गूढ़ता छिपी थी। वे चंचल भाव से चारों तरफ नाच रही थीं। साधारणतया वह एक मामूली औरत दिखलाई पड़ती थी, पर ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट मालूम पड़ता था कि वह सुन्दर रही होगी—अब भी वह सुन्दर थी। पर अब चिन्ता और कठोर जीवन उसके शरीर में व्याप गया था।

मैं बारंबार उसे कनखियों से देखने लगा। मन में कुछ बुरा भाव न था; पर वह कुछ अद्भुत-सी लगती थी। मुझे इस तरह घूरते देख कर वह कुछ विचलित हो उठी। वह बारंबार खिड़की से बाहर मुँह निकाल कर देखती थी, मानो उसके मन में यह था कि स्टेशन आए, और वह उतरकर भागे।

मैं अपनी हरकत पर लज्जित हुआ। वह थोड़ी देर में स्थिर हुई, और कुछ रोष-भरी दृष्टि से मेरी ओर देखने लगी। मैंने झेंपकर जेब से एक अँगरेजी दैनिक निकाला और पढ़ने लगा।

हठात् अंगरेजी के संक्षिप्त और तीखे, किंतु मृदुल शब्द कान में पड़े। उसने पूछा था —

"कहाँ जा रहे हैं ?"

शुद्ध अंगरेजी उच्चारण सुनकर मैंने अकचकाकर उसकी ओर देखा, वह तीव्र दृष्टि से मेरी ओर ताक रही थी। वह दृष्टि एक बार बलात मेरे हृदय में घुस गई। मैं कांप गया—क्यों ? यह नहीं कह सकता। मैंने कुछ शंकित स्वर में कहा —"मेरठ। आप कहाँ जायंगी ?"

मानो मेरा प्रश्न उसने सुना ही नहीं। उसने फिर पूछा—

"आप वहीं रहते हैं ?"

अपने प्रश्न का उत्तर न पाना मुझे अच्छा नहीं लगा, पर मैंने संयम से कहा—"नहीं, मैं दिल्ली में रहता हूँ। वहाँ मैं एक मित्र के यहाँ शादी में जा रहा हूँ।"

मैंने देखा, इस उत्तर से उसे कुछ संतोष हुआ, और उसके

चेहरे का भाव बदल गया। इस बार उसने कोमल तथा विनम्र स्वर में पूछा—"आप दिल्ली में क्या काम करते हैं ?"

"मैं वकील हूँ।"

यह उत्तर सुन कर वह कुछ देर चुप रही, फिर उसने कहा—"क्षमा कीजिये, मैं वकीलों से घृणा करती हूं, परंतु आप एक सज्जन आदमी प्रतीत होते हैं।" उसकी इस दबंगता पर मैं हैरान हो गया। पर मैं उसकी बात का बुरा न मान सका। एक प्रकार से उसका रुआब मुझ पर छा गया, मैंने अत्यन्त नम्रता से पूछा—

"क्षमा कीजिये, यदि हर्ज न हो, तो आप अपना परिचय दीजिये।"

"मेरा परिचय कुछ नहीं, पर आप चाहें तो मुझे कुछ सहायता दे सकते हैं।"

मैं कुछ सोच ही न सका। मैंने उतावली से कहा—"बहुत खुशी से। मैं यदि कुछ आपकी सहायता कर सका, तो मुझे आनन्द होगा।"

उसने बिना ही भूमिका के कहा—

"मैं एक दिन केवल ठहरना चाहती हूँ।"

मेरे मित्र मेरठ के प्रसिद्ध रईस हैं। उनका वहां अपना घर है। इस युवती को वहां ठहराने में कोई बाधा न थी। मेरे मुँह से निकलना चाहा कि अवश्य, पर मैं सोचने लगा—यह इतनी निर्भीक, तेजस्विनी और अद्भुत युवती कौन है ? एकाएक मेरे मुंह से कुछ बात न निकली।

वह कुछ देर चुपचाप मेरी तरफ देखती रही। कुछ क्षण बाद मैंने पूछा—"परन्तु आपका परिचय ?"

उसने रुष्ट होकर कहा—"परिचय कुछ नहीं।" और मुंह फेरकर फिर गाड़ी के बाहर देखने लगी।

न जाने क्यों मैं अपने आपको धिक्कारने लगा। मैंने सोचा अनुचित बात कह डाली। मुझे किसी युवती का इस प्रकार परिचय पूछने का क्या अधिकार है। पर एकाएक किसी अपरिचित को मैं किसी के घर में क्या कहकर ठहरा सकता हूं।

उस युवती का कुछ ऐसा रुआब मेरे ऊपर सवार हुआ कि मैंने अपनी कठिनाई बड़ी ही अधीनता से उसे सुना दी। उसने उसी भांति तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर ताकते हुये स्थिर स्वर से कहा—"इसमें कठिनाई क्या है ?

"वे लोग आपका परिचय पूछेंगे।"

"कहिये, बहन हैं, दूर के रिस्ते की हैं, यह भी चली आई है। विवाह-समारोह में तो स्त्रियां विशेष उत्सुक रहती ही हैं।"

मैं अब अधिक नहीं सोच सका। मैंने कहा-"तब चलिये वह एक प्रकार से मेरा ही घर है, कुछ हर्ज नहीं। पर अब तो आप बहन हुईं न, अब तो परिचय दीजिये !"

परिचय का नाम सुनकर फिर उसकी त्योरियों में बल पड़ गये, और वह रोष में आ गई। उसने अत्यधिक रूखे स्वर में कहा—"तीन बार तो कह चुकी महाशय, परिचय कुछ नहीं।"

अब मुझे कुछ भी कहने का साहस न हुआ। वह भी नहीं बोली। चुपचाप गाड़ी से बाहर ताकती रही। ग़ाजियाबाद आ गया।

मैंने बातें करने के विचार से कहा—"आपको कुछ चाहिये तो नहीं?"

"नहीं।" उत्तर जैसा संक्षिप्त था, वैसा ही रूखा भी था। ऐसी अद्भुत स्त्री तो देखी नहीं। मैंने सोचा, बड़ा बुरा किया जो ठहराने का वचन दिया। न जाने कौन है, पर कोई भी हो, शिक्षिता है, और बुरे विचारों की भी नहीं है। अवश्य कोई कुलीन स्त्री है। कुछ खानगी कारणों से यहां आई होगी। अंगरेजी पढ़ी लिखी लड़कियाँ ऐसी ही उद्धत हो जाती हैं।

मैं यह सोच ही रहा था कि ५-७ आदमी गाड़ी पर चढ़ आये इनमें एक पुलिस का दारोगा भी था। दो खुफिया पुलिस के सिपाही थे। दारोगा ने युवती की सीट पर बैठ कर पूछा—

"आप कहां जायेंगी?"

वह बोली नहीं।

दारोगा साहब ने साथ के कान्सटेबल से कुछ संकेत किया और फिर पूछा—

"आपने सुना नहीं, मैंने आपसे पूछा, आप कहाँ जायंगी?"

इस बार उसने दारोगा की ओर घूम कर देखा, और शुद्ध अंगरेजी में कहा—"क्या आप टिकट चेकर हैं, या रेल के कोई कर्मचारी, आप क्यों पूछते हैं। और किस अधिकार से?" इसके बाद उसने मेरी ओर देखकर कुछ कोप पूर्ण स्वर में, शुद्ध हिंदी-भाषा में, कहा—

"तुम चुपचाप बैठे तमाशा देख रहे हो, और यह आदमी बिना कारण मुझसे सवाल करता जा रहा है। इस बेशर्म को स्त्रियों से फालतू बातचीत करते जरा भी झिझक नहीं।"

मैं चौंक पड़ा। दारोगा मेरी ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखने लगा। दो और भी भद्र पुरुष, जो डिब्बे में आ गये थे, वे भी युवती के करारे उत्तर से चमत्कृत हो गये थे। मैंने संभल कर कहा—

"वह मेरी बहन है, हम लोग मेरठ एक शादी में जा रहे हैं, आप क्या जानना चाहते हैं?" दारोगा एक दम झेंप गया, वह शायद मुझे जानता था। युवती ने एक क्षण मेरी ओर देखा—उसके होठ काँपे, और फिर वह खिड़की के बाहर ताकने लगी। भद्र पुरुषों ने कहा—"आप चाहे भी जो हों, पर स्त्रियों से ऐसा व्यवहार न करना चाहिये।" दारोगा ने कहा—"आप लोग और वकील साहब और बहनजी भी मुझे क्षमा करें—मैंने बड़ी भूल की। पर मेरा मतलब कुछ और ही था।" मैंने शेर होकर कहा—"आप लोगों का हमेशा और ही मतलब हुआ करता है, पर भले घर की बहन-बेटियों की कुछ इज्जत-आबरू होती है जनाब?" दारोगा साहब बहुत ही बिलैया दंडवत् करने लगे। बीच में एक स्टेशन और आया। मैं अभी तक दारोगाजी को डांट रहा था। युवती ने साफ शब्दों में कहा—"भाई, जरा पानी ले लो।" मैंने गिलास में पानी लेकर उसे दिया, वह पानी पीकर चुपचाप फिर खिड़की के बाहर मुह निकाल कर बैठ गई।

मेरठ आया, और हम लोग चले। उसके पास कुछ भी सामान न था। वह काले खद्दर की एक साड़ी पहने थी। और एक छोटी सी पोटली उसके साथ थी। जेवर के नाम उसके बदन पर कांच की चूड़ियां तक न थीं। पैरों में जूते भी न थे। वह चुपचाप मेरे पीछे २ चली आई। मैंने तांगा किया,

और वह पीछे की सीट पर बैठ गई। मैं आगे की सीट पर बैठा, और तांगा हवा हो गया।

(२)

बहुत चेष्टा करने पर भी मैं उससे उसका नाम पूछने का साहस न कर सका। मैं सोचता था, वहां कोई नाम पूछेगा, तो बताऊंगा क्या? पर फिर भी पूछ न सका। मित्र का घर आ गया। और मैंने बहुत कहकर युवती को भीतर भिजवा दिया। उसने जाते २ कहा—"अवकाश पाकर आप एक घंटे में मुझसे मिल लें।" मैंने स्वीकृति दी, और वह चली गई।

एक घंटे बाद मैं भीतर उससे मिलने गया। वह स्नान आदि करके तैयार बैठी थी। मुझे देखते ही कहा—"एक टैक्सी मेरे वास्ते ला दीजिये, मुझे कहीं जाना है।"

मैंने सोचा, मेरठ जैसे छोटे से शहर में टैक्सी में कहां जाना है। मैंने कुछ दबी जबान से कहा—"ताँगे से भी काम चल जायगा।" उसने रुखाई से कहा—"नहीं टैक्सी चाहिए।" अजब औरत थी। जरा-सी बात मन के विरुद्ध हुई नहीं कि उसके नेत्रों और चेहरे पर रुखाई आई।

मैंने टैक्सी मगाने को नौकर को भेज दिया। अब मेरे मन में एक बात आई, इसे कुछ रु० खर्च को देने चाहियें। पर कहूं कैसे? जो नाराज हो जाय, तो? इसका जैसा वेष है, उसे देखते तो दरिद्र मालूम होती है, काफी सामान तक पास नहीं। मैं पशोपेश में पड़ा कुछ सोच ही रहा था—एकाएक उसने कहा—"एक कष्ट और आपको और दूंगी।" मैंने समझा, अवश्य यह कुछ रुपया माँगेगी। मैंने जेब से मनीबेग निकालते हुये

कहा—"कहिये।" उसने अपने हाथ की पोटली खाली, और एक बन्डल निकाल कर मेरे हाथ में थमा दिया! देखा, यह नोटों का गट्ठर है। सौ-सौ रु० के नोट थे। मैं अवाक् रह गया। उसने सहज स्वभाव से कहा-"पंद्रह हजार रुपये हैं। इन्हें जरा रख लीजिये, कहीं रास्ते में गिर-गिरा पड़ें, कहां-कहां लिये फिरूंगी।" मेरा तो सिर चकराने लगा। स्त्री है या माया मूर्ति, कपड़े तक बदन पर काफी नहीं, और पंद्रह हजार रुपये हाथों में लिए फिरती है। और बिना गवाह-प्रमाण मुझ अपरिचित को सौंप रही है, मानो रद्दी अखबारों का गट्ठर है। मैंने कहा—"ठहरिये, रकम को इस भांति रखना ठीक नहीं।"

उसने लापरवाही से कहा—"मैं लौटकर ले लूंगी, अभी अभी तो आप रख लीजिये।" जिस लहजे में उसने कहा—मैं अब टालमटोल न कर सका। काठ की पुतली की भांति नोटों का बंडल हाथ में लिये विमूढ़ बना खड़ा रहा।

टैक्सी आई और वह लपककर उसमें बैठ गई। एक क्षीण मुस्कराहट उसके मुख पर आई। उसने कहा-"एक बात के लिये क्षमा कीजियेगा! मैंने रेल में आपको 'तुम' कहा था। आवश्यकता-वश ही यह अनुचित घनिष्ठता का वाक्य निकल गया था।" वह मानो और भी जोर से मुस्करा पड़ी, और उसकी सुन्दर, मोहक दंत पंक्ति की एक रेखा आंखों में चौंध लगा गई। दूसरे ही क्षण मोटर आँखों से ओझल होगई।

(३)

तीन दिन बीत गये। न वह आई न कुछ समाचार मिला। तीनों दिन मैं एक टक उसकी बाट देखता रहा। न सोया, न

खाया, न कुछ पिया। कब विवाह हुआ और कब क्या हुआ? मुझे कुछ स्मरण नहीं। मानो हजार बोतलों का नशा सिर पर सवार था। छाती पर नोटों का गट्ठर और आंखों में वह अंतिम हास्य! बस, उस समय मैं इन्हीं दो चीजों को देख और जान सका। मित्र हैरान थे। पर मैं तो मानो गहरे स्वप्न में मग्न था।

तीसरे दिन एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—"भाई, मुझे क्षमा करना, अब मैं आपसे नहीं मिल सकती। वे रुपये जो आपको दे आई हूं, मेरठ-षडयंत्र केस में खर्च करने को वहां के माननीय अभियुक्तों की राय से उनके वकीलों को दे दीजिये। मैं इसी काम के लिये मेरठ गई थी—आपसे मिलकर अनायास ही मेरा यह काम होगया। रुपया इस पत्र के पाने के २४ घंटे के भीतर ठिकाने पर पहुंचा दीजिये, वरना जो लोग इसकी निगरानी के लिए नियत हैं, वह इस अवधि के बाद तत्काल आपको गोली मार देंगे। सावधान! दगा या असावधानी न कीजिएगा। इस पत्र के उत्तर की आवश्यकता नहीं। रुपया ठिकाने पर पहुंचते ही मुझे तत्काल उसका पता लग जायगा।

आपकी,

धर्म-बहन"

एक बार पत्र पढ़कर मेरा संपूर्ण शरीर कांप उठा, और पत्र हाथ से गिर गया। इसके बाद मैंने झटपट झुककर पत्र को उठा लिया। भय से इधर-उधर देखा, कोई देख तो नहीं रहा। मेरी आँखों में आंसू भर आये। मैं नहीं जानता क्यों? मैंने पत्र को एक बार चूमा, और फिर आंखों और माथे से लगाया।

इसके बाद उसे उसी समय जला दिया। नोटों का बण्डल अभी भी मेरी जेब था।

(४)

रुपए मैंने किसे दिए, वह जान देकर भी मैं किसी को नहीं बताऊंगा। हां, इतना अवश्य कह देता हूं कि मैं इस काम से निपट कर शीघ्र ही दिल्ली चला आया। पर कई दिन तक कचहरी न जा सका। ऐसा मालूम होता था, मानो शरीर की जान सी निकल गई हो।। एक दिन संध्या-समय मेरे नौकर ने कहा—"कुछ लोग बहुत आवश्यक काम से आप से भेंट किया चाहते हैं।" बैठक में जाकर देखा तो वही दारोगाजी थे। उनके साथ डि० सुपरिंटेंडेंट पुलिस और कई सी०आई०डी० इन्स्पेक्टर भी थे। देखते ही मेरे देवता कूच कर गये। देखा सारा मकान घेर लिया गया है। मैंने जरा रूखे स्वर से पूछा—"कहिए क्या बात है?"

"दारोगा जी ने थोड़ा हसकर कहा—"कुछ नहीं, जरा आपकी बहनजी से एक बार मुलाकात करके कुछ पूछना है?" क्षण-भर के लिए मेरे शरीर में खून की गति रुक गई। पर वकीली दिमाग ने समय पर काम दिया।

मैंने आश्चर्य प्रदर्शन करके कहा—

"उनसे क्या पूछना है?"

"यह मैं आपको नहीं बता सकता।"

"यह कैसे संभव हो सकता है कि आप पर्देनशीन महिला से इस तरह बातचीत कर सकें।"

"बातचीत तो जनाब हो चुकी है, मैं जानता हूं कि वे पर्दे की क़ायल नहीं।"

मैंने और भी आश्चर्य का भाव चेहरे पर लाकर कहा—"आप कब उनसे बातचीत कर चुके हैं?"

"क्या आप भूल गए—उसी दिन रेल में।"

"मैं नहीं समझता, आप किस दिन की बात कह रहे हैं?"

दारोग़ा जी ज़ोर से हंस पड़े। उन्होंने डाढ़ी पर हाथ फेर कहा—"यह भी अभी मालूम होजायगा।"

मैंने खूब गुस्से का भाव चेहरे पर लाकर कहा—"किस तरह?"

"आप कृपा कर उन्हें ज़रा बुला दीजिए।"

मैंने क्षण-भर सोचने का बहाना किया, फिर मैंने नौकर को बुलाकर कहा—"जाओ, ज़रा बीबी जी को तो बुला लाओ।"

क्षण-भर ही में रेवती सशरीर सामने आ खड़ी हुई।

दारोग़ा के काटो तो खून नहीं। मैंने उनकी तरफ न देखकर रेवती से पूछा—

"रेवती, कभी तू ने इन से बातचीत की थी?"

"कभी नहीं!"

दारोग़ाजी ने घबराकर कहा—"यह नहीं हैं साहब।"

मैंने रेवती को जाने का इशारा करके कहा—"जनाब, मैं आप पर हतक का दावा करूंगा!" डिप्टी साहब अब तक चुपचाप बैठे थे। बोले—"आपके कुल कितनी बहन हैं?"

मैंने कहा—"एक यही है।"

"यह आपके साथ उस दिन मेरठ जारही थीं?"

"यह कल ही कलकत्ते से आई हैं।"

"तब उस दिन आपके साथ कौन थी?"

"किस दिन? मुझे कुछ याद नहीं आता। आप किस दिन की बात कह रहे हैं?"

दारोगा जी बोल उठे—"यह तो अच्छी दिल्लगी है।"

मैंने कहा—"जनाब, दिल्लगी के योग्य मेरा आपका कोई रिश्ता नहीं है।"

डिप्टी साहब झल्ला उठे। बोले—"आपके मकान की तलाशी ली जायगी, यह वारण्ट है।"

मैंने और भी गुस्से और लाचारी के भाव दिखाकर कहा—"विरोध करना फ़जूल है, आप जो चाहें, सो करें। मैं कानूनी कार्यवाही कर लूंगा।"

६-७ घण्टों तक तलाशी होती रही। पुलिस ने सारा घर छान डाला।

खीझकर डिप्टी सु० साहब बाहर निकल आए। मैंने भी खूब रोष दिखाकर कहा—"जनाब, अब आप जरा तलाशी पर अपनी रिपोर्ट भी लिख दीजिए।"

डिप्टी साहब मेरी ओर घूरने लगे, पर मैंने बाजी मार ली थी। वही धवल दंत-पंक्ति मेरी आंखों में प्रकाश डालकर हृदय में साहस का संचार कर रही थी। डिप्टी साहब ने कहा—"क्या आप उस स्त्री के विषय में कुछ भी नहीं बतावेंगे?"

"किस स्त्री के सम्बन्ध में?"

"जो उसदिन आपके साथ मेरठ जारही थी?"

"किस दिन?"

डिप्टी साहब चुपचाप होंठ चबाते रहे। दारोगा जी झेंप रहे थे। बड़बड़ा भी रहे थे। डिप्टी साहब ने टोप उठाकर कहा—"बहुत अच्छा, अभी तो जाते हैं। बेहतर था, आप सब बता देते।"

"मैंने ज़ोर से मेज पर हाथ पटककर कहा—"कल ही मैं आपसे अपने इस अपमान का जवाब तलब करूंगा।"

डिप्टीसाहब चल दिये। मैं भी साथ ही बाहर तक आया। सैंकड़ों आदमी इकट्ठे होगये थे। जब पुलिस अपनी लारी में लद गई, तो मैंने पूछा—"आप ईश्वर के लिये यह तो बताइये कि किसे ढूंढ़ते फिरते हैं?"

डिप्टी साहब ने खीजकर कहा—

"मिसेज़ भगवती चरण को।"

Kamey
4-6-52

खूनी

उसका नाम मत पूछिये। आज दस वर्ष से उस नाम को हृदय से और उस सूरत को आंखों से दूर करने को पागल हुआ फिरता हूं। पर वह नाम और वह सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूँ, वह निडर है- मैं रोता हूं - वह हंसता है- मैं मर जाऊंगा - वह अमर है।

मेरी उसकी कभी की जान पहिचान न थी। दिल्ली में हमारी गुप्त सभा थी। सब दल के आदमी आये थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था। वह मेरे पास ही खड़ा एक कुत्ते के पिल्ले से किलोल कर रहा था। हमारे दल के नायक ने मेरे पास आकर सहज गम्भीर स्वर में धीरे से कहा—"इस युवक को अच्छी तरह जान पहिचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

नायक चले गये, और मैं युवक की ओर झुका- मैंने समझा शायद नायक हम दोनों को कोई एक काम सुपुर्द करेगा।

मैंने उससे हंसकर कहा—"कैसा प्यारा जानवर है!" युवक ने कच्चे दूध के समान स्वच्छ आंखें मेरे मुख पर डाल कर कहा— "काश! मैं इसका सहोदर भाई होता!" मैं ठठा कर हंस पड़ा। वह मुस्करा कर रह गया। कुछ बातें हुईं। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन पर दिन व्यतीत हुए। अछूते प्यार की धाराएं दोनों हृदयों में उमड़ कर एक धार होगई। सरल अकपट व्यवहार पर दोनों मुग्ध होगये। वह मुझे अपने गांव में ले गया। किसी तरह न माना। गांव के एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गांव के जमींदार का बेटा था। इकलौता बेटा था। हृदय और सूरत का एकसा। उसकी मां ने दो दिन में ही मुझे बेटा कहना शुरू कर दिया। अपने होश के दिनों में मैंने वहां सात दिन माता का स्नेह पाया। फिर चला आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनों के प्राण दोनों में अटक रहे थे। एक दिन उन्मत्त प्रेम के आवेश में उसने कहा था—"किसी अघट घटना से जो हम दोनों में से एक स्त्री बन जाय तो मैं तो तुम से ब्याह ही कर लूं।"

नायक से कई बार पूछा, क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करने को कहा था। वह सदा यही कहते—"समय पर जानोगे। गुप्त सभा की भयंकर गंभीरता सब लोग नहीं जान सकते।" नायक मूर्तिमान भयंकर गंभीर थे।

उस दिन भोजन के बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकेट में अब भी धरा है। पर किसी को दिखाऊंगा नहीं। उसे देखकर दो सांस सुख से ले लेता हूँ। आंसू बहाकर हल्का हो जाता है। किसी पुराने रोगी को जैसे कोई दवाई खुराक बन जाती है, मेरी वेदना की भी यह चिट्ठी खुराक बन गयी है।

चिट्ठी पढ़ भी न पाया था। नायक ने बुलाया। मैं सामने सरल स्वभाव खड़ा होगया। बारहों प्रधान हाजिर थे। सन्नाटा

भीषण सत्य की तस्वीर खींच रहा था। मैं एक ही मिनिट में गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायक की मर्मभेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रों में गढ़ गई—जैसे तप्त लोहे के तीर आंख में घुस गये हों। मैं पलक मारना भूल गया। मानों नेत्रों में आग लग गई हो। पांच मिनिट बीत गये। नायक ने गम्भीर वाणी से कहा—"सावधान! क्या तुम तैयार हो?"

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभा का परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीता की रक्तवर्ण रेशमी पोथी धीरे से मेज पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथों से उठाकर उसे सिर पर चढ़ा ली।

नायक ने मेरे हाथ से पुस्तक ले ली। क्षण भर सन्नाटा रहा। नायक ने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण भर में ६ नली पिस्तौल मेज पर रख दी।

वह छः अक्षरों का शब्द उस पिस्तौल की छओं गोलियों की तरह मस्तक में घुस गया। पर कम्पित न हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछने का निषेध था। नियमपूर्वक मैंने पिस्तौल उठाकर छाती पर रक्खी और स्थान से हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम पर इतना भरोसा उसे था। देखते ही लिपट गया। घर गये, चार दिन रहे। वह क्या कहता है क्या करता है। मैं देख सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न होगया था, आत्मा दृढ़ था-हृदय धड़क रहा था, पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जल-पान करके हम स्टेशन पर चले। तांगा नहीं लिया जंगल में घूमने जाने का विचार था। काव्यों की बढ़ बढ़ कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्ती में वह मेरे मन की उद्विग्नता भी देख न सका। धूप और खिली। पसीने बह चले। मैंने कहा चलो—"कहीं छांह में बैठें।" घनी कुञ्ज सामने थी। वहीं गये। बैठते ही जेब से दो अमरूद निकाल कर उसने कहा— "सिर्फ दो ही पके थे, घर के बगीचे के हैं। यहीं बैठकर खाने के लिए लाया था—एक तुम्हारा, एक मेरा।" मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ—वह आधा अमरूद खा चुका था। उसका ध्यान उसी के स्वाद में था। मैंने धीरे से पिस्तौल निकाली, घोड़ा चढ़ाया और कम्पित स्वर में उसका नाम लेकर कहा:— "अमरूद फैंक दो और भगवान् का नाम लो—मैं तुम्हें गोली मारता हूँ।"

उसे विश्वास न हुआ, उसने कहा—"बहुत ठीक, पर इसे खा तो लेने दो।" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कण्ठ से कहा—"अच्छा खालो।" खाकर वह खड़ा होगया। सीधा तन कर। फिर उसने कहा, "अच्छा, मारो गोली।" मैंने कहा—"हंसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली ही मारता हूँ भगवान् का नाम लो।" उसने हंसी में ही भगवान् का नाम लिया और फिर वह नकली गम्भीरता से खड़ा होगया। मैंने एक हाथ से अपनी छाती दबाकर कहा—"ईश्वर की सौगन्ध! हंसी मत समझो मैं तुम्हें गोली मारता हूँ।"

मेरी आंखों में वही कच्चे दूध के समान स्वच्छ आँखें मिलाकर उसने कहा:—"मारो।"

एक क्षण भर भी विलम्ब करने से मैं कर्तव्य विमुख हो जाता। पल पल में साहस डूब रहा था। दनादन दो शब्द गूंज उठे। वह कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा! दोनों गोली छाती को पार कर गईं।

मैं भागा नहीं। भय से इधर उधर मैंने देखा भी नहीं, रोया भी नहीं। मैंने उसे गोद में उठाया। मुह की धूल पोंछी। रक्त साफ किया। आँखों में इतनी ही देर में कुछ का कुछ हो गया था। देर तक लिये बैठा रहा—जैसे माँ सोते बच्चे को जागने के भय से, लिये निश्चल बैठी रहती है।

फिर मैं उठा। इन्धन चुना, चिता बनाई—और जलाई—अन्त तक वहीं बैठा रहा।

बारहों प्रधान हाजिर थे। उसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायक ने नीरव हाथ बढ़ाकर पिस्तौल मांगी। पिस्तौल दे दी। कार्यसिद्धि का संकेत सम्पूर्ण हुआ। नायक ने खड़े होकर वैसे ही गम्भीर स्वर में कहा— "तेरहवें प्रधान की कुर्सी हम तुम्हें देते हैं।" मैंने कहा— "तेरहवें प्रधान की हैसियत से मैं पूछता हूं कि उसका अपराध मुझे बताया जाय।"

नायक ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया— "वह हमारे हत्या सम्बन्धी षड्यन्त्रों का विरोधी था। हमें उस पर सरकारी मुखबिर होने का सन्देह था।" मैं कुछ कहने योग्य न रहा। नायक ने वैसी ही गम्भीरता से कहा— "नवीन प्रधान की हैसियत से तुम यथेच्छ एक पुरस्कार माँग सकते हो।"

अब मैं रो उठा। मैंने कहा— "मुझे मेरे वचन फेर दो। मुझे मेरी प्रतिज्ञाओं से मुक्त करो, मैं उसी के समुदाय का हूं। तुम

लोगों में नंगी छाती पर तलवार के घाव खाने की मर्दानगी न हो तो तुम अपने को देश भक्त कहने में संतोष करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओं को मैं घृणा करता हूं। मैं हत्यारों का साथी, सलाही और मित्र नहीं रह सकता, तुम तेहरवीं कुर्सी को जला दो।"

नायक को क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थर की मूर्ति की तरह बैठे रहे। नायक ने उसी गम्भीर स्वर में कहा—"तुम्हारे इन शब्दों की सजा मौत है। पर नियमानुसार तुम्हें क्षमा पुरस्कार में दी जाती है।"

मैं उठ कर चला गया। देश भर घूमा, कहीं ठहरा नहीं। भूख प्यास, विश्राम और शांति की इच्छा ही मर गई दीखती है। बस अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदय की रोशनी हैं। मेरा वारन्ट निकला था, मनमें आई कि फांसी पर जा चढ़ूं। फिर सोचा, मरते ही उस सज्जन को भूल जाऊंगा। मरने में अब क्या स्वाद है? जीना ही चाहता हूं। किसी तरह सदा जीते रहने की लालसा मन में बसी है। जीते जी ही मैं उसे देख और याद रख सकता हूं।

मुखबिर

(१)

एक २२ वर्ष का सुन्दर सुगठित युवक सिर्फ एक स्वच्छ खद्दर की धोती पहने घास पर घुटनों के बल औंधा पड़ा था, और उसकी पीठ पर एक गौर वर्ण सुकुमार बालक जिसकी आयु ५ वर्ष की होगी सवार था। बालक युवक के कान पकड़ कर उसे घोड़ा बनाये हुए था और लात मारकर अपने घोड़े को चलाने का प्रयत्न कर रहा था। पर घोड़ा वहीं अड़ा खड़ा था।

शरद् ऋतु का सुन्दर प्रभाव था, सुनहरी धूप चारों ओर फैली हुई थी। बालक और युवक दोनों मानो संसार भर के प्राणियों की अपेक्षा सर्वाधिक प्रसन्न थे।

गांव छोटा सा था और सामने हरे भरे खेत लहरा रहे थे। उन्मुक्त वायु इन प्रकृत विनोदियों से सानन्द विनोद कर रही थी। धीरे २ एक और दुबला पतला युवक वहीं आ खड़ा हुआ। वह इन दोनों से कुछ दूर एक वृक्ष के नीचे खड़ा इनका खेल देखने लगा। घोड़े का अभिनय करने वाले युवक ने उसे देखा नहीं। वह जोर से हंस और बदन हिला २ कर सवार को गिराने की चेष्टा कर रहा था। हठात् बालक का ध्यान निकट खड़े उस आगन्तुक की ओर चला गया। उसका उल्लास प्रवाह रुक गया। उसने कहा—बाबू.........।"

युवक ने आंख उठाकर देखा और चौंक उठा। फिर उसने बच्चे को धीरे से पीठ से उतार कर उसे घर चले जाने का आदेश किया और संकेत से युवक को निकट बुलाकर पूछा, "सब ठीक है?"

"नहीं।"

"क्या हुआ?"

"प्रयत्न निष्फल हुआ।"

युवक की आंखें चमकने लगी। उसने कुछ ठहर कर पूछा—"कारण?"

"सरदार स्वयं ही आपको कैफ़ियत देना चाहते हैं।"

"क्या कोई और भी सम्वाद है।"

"हां, पुलिस ने नम्बर चार और तीन सेन्टरों पर छापा मार कर वहाँ के सभी कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया है।"

"सरदार कहां है?"

"वे १४ वें सेंटर में परसों शाम को पौने आठ बजे आपकी प्रतीक्षा करेंगे।

"सेंटर २ में क्या हो रहा है?"

"अपने कार्यक्रम की तैयारियां।"

"प्रयोग तिथि कौन सी है?"

"चौथी नवम्बर।"

"बाहर की क्या ख़बर है?"

"कुछ भी नहीं।"

"सातवें सेंटर का प्रयोग कब होगा?"

"अनिश्चित समय के लिये वह स्थगित कर दिया गया है।"

"किसकी आज्ञा से और क्यों ?"

"पुलिस बहुत ही सावधान है और साधन भी यथेष्ट उपस्थित नहीं।"

"अब तुम कहां जाओगे ?"

"मैं आपका आदेश सरदार को दूंगा।"

"अच्छी बात है मैं नियत समय पर सरदार से मिलूंगा।"

आगन्तुक चला गया और युवक गम्भीर भाव से वहीं घास पर बैठकर अपनी काल्पनिक दृष्टि से किसी अज्ञात भय को देखने लगा।

थोड़ी देर बाद एक और व्यक्ति आकर युवक के पास बैठ गया और स्नेह भरे स्वर में पूछा—

"वह फिर आया था क्या भय्या ?"

युवक चौंक उठा और हंस पड़ा। दूसरे व्यक्ति ने फिर कहा—"लल्लू कहता था वह बाबू आया है।"

"हाँ आया तो था ?"

"कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ ?"

"कुछ नहीं, मैंने समझा दिया। वह १५ दिन को मान गया है। कुछ अधिक व्याज का वादा करने से ही वह सन्तुष्ट हो गया।"

"पर भैय्या यह कर्ज चुकेगा कैसे ?"

"सब चुक जायगा, तुम चिन्ता क्यों करते हो ? लल्लू खा चुका ?"

"कहां ? वह बिना तुम्हारे थोड़े ही खायगा।",

"बड़ा पाजी है। चलो फिर खाँय। ओह! भूख के मारे पेट में चूहे कूद रहे हैं।"

दोनों चल दिये। युवक कनखियों से दूसरे व्यक्ति को देख रहा था और वह अत्यन्त चिन्तित भाव से नीचा सिर किये कुछ सोचता जाता था। हठात् उसने सिर उठाकर कहा—

"एक काम किया जाय भैय्या, वह गया किधर को है? मैं उसे दौड़ कर बुला लाता हूं।"

"क्यों क्या करोगे?"

"घर में एक दो गहने हैं, उन्हें बेचकर इसका रुपया अभी दे दिया जाय।"

"इस समय तो बला टल ही गई, फिर देखा जायगा। इस वक्त चिन्ता न करो।"

"तुम क्या कुछ कम चिन्तित बैठे थे? मैं मर जाऊंगा पर तुम्हें और लल्लू को कभी उदास नहीं देख सकता।"

युवक ने एक बार जी भर कर अपने इस पतले दुबले मित्र की ओर देखा। बड़ी कठिनाई से उसने अपना उद्वेग और आंसू रोके फिर थोड़ी देर बाद वह अस्वभाविक रूप से हंस पड़ा। उसकी हंसी स वह व्यक्ति भी हंस पड़ा और पूछा—

"इतनी जोर से क्यों हंसे?"

"तुम्हारे भोलेपन पर।"

"क्या तुम मेरी बात पसन्द नहीं करते?"

"हरगिज नहीं, भाभी की चीज लेने का भला हमें क्या अधिकार है।"

घर निकट आगया और बालक ने चिल्ला कर कहा—छोटे चाचा, देखो यह मेरा नया कुरता!"

"यह कहां पाया रे पाजी, इसे तो मैं पहनूंगा।" युवक ने बच्चे को गोद में उठा लिया। इसके बाद तीनों प्रेमी मिल कर एक साथ भोजन करने बैठे।

(२)

युवक का नाम और व्यवसाय बताने की आवश्यकता नहीं। उसके मित्र का नाम था हरसनदास। इसकी आयु थी लगभग ३५ वर्ष। एकाध बाल पकने लगा था, शरीर का दुबला पतला भद्दा सा आदमी था। बच्चा इसी व्यक्ति का एक मात्र पुत्र था। बच्चे की माता हरसरन की दूसरी पत्नी थी, वह सुन्दर चुस्त और अत्यन्त विनोदी स्वभाव की स्त्री थी। युवक न इसकी जाति का था न बिरादरी का। वह एक अनाथ बालक के तौर पर इस गांव में अल्पावस्था में आया और यहीं बड़ा हुआ था। बीच के सात आठ वर्ष उसने दिल्ली में व्यतीत किये थे। इन सात आठ वर्षों का उसका गोपनीय इतिहास कोई नहीं जानता। लोग तरह तरह के अन्दाजा लगाया करते थे। कोई कहता था वह कालिज तक की पढ़ाई पास कर चुका। कोई कहता वह बड़ा कारबारी हो गया है। पर युवक सिवा १०।५ दिनों के लिए बीच २ में गैर हाजिर हो जाने के अपने कारबार के संबंध

में कुछ प्रमाण नहीं रखता था। अलबत्ता वह गांव भर में प्रिय और आदरणीय अवश्य माना जाता था। वह सबकी सब प्रकार की सेवा करता। उसका चरित्र निर्मल और उच्च था। उसकी भाषा संयत, विनम्र और स्वभाव अत्यन्त सरल था! गांव वाले उसे मानते, प्यार करते और आड़े वक्त उसी से सलाह मशविरा भी करते थे।

हरसरन पर उसकी योग्यता, देश भक्ति, त्याग और चरित्र का काफी प्रभाव था। हरसरन के बच्चे और इस युवक का प्राण तो एक ही था। वह और उसकी स्त्री दोनों ही युवक की मानों पूजा करते हैं। युवक का घर नहीं, कुटुम्ब नहीं, सगे सम्बन्धी नहीं, वह हरसरन के ही घर रहता, वहीं खाता सोता था। मानों वह उसी घर का व्यक्ति है। गरीब हरसरन तन मन से युवक के सुख दुःख का ख्याल रखता था।

भोजन के बाद युवक ने कहा—

"देखो भाई हरसरन, आज मेरा शहर जाने का इरादा है।"

"क्यों?"

"एक नौकरी लग गई है, अब शायद वहीं रहना होगा।"

"कितने की नौकरी है?"

"पचास साठ तो मिल ही जावेंगे।"

"बस इतने ही?"

"नौकरी आराम की भी तो है।"

"क्या सरकारी है?"

"राम राम ! क्या मैं सरकारी नौकरी करूंगा।"

"यही तो, फिर चलो हम भी शहर चलें, वहीं कुछ काम धन्धा कर लेंगे।"

"तुम भला वहां क्या करोगे ?"

"हम तुम्हें ज़रा भी कष्ट न देंगे। अपने लिये कोई काम ढूंढ़ लेंगे। क्या कोई नौकरी नहीं मिल जायगी ?"

"नहीं ऐसा न होगा। तुम झंझट में पड़ जाओगे। यहां मौज करो, मैं बराबर आता रहूंगा।"

इतने में हरसरनदास की पत्नी ने आकर कहा—'वहाँ कहां खाओगे ? कहाँ रहोगे ? फिर लल्लू तुम्हारे बिना कैसे रहेगा ?"

बहुत वादविवाद के बाद दूसरे दिन चारों प्राणियों ने कूच कर दिया और दिल्ली के एक मुहल्ले में साधारण मकान किराये पर लेकर रहने लगे। हरसरनदास किसी कपड़े की दुकान में २०) मासिक का नौकर हो गया। यहां रहते इन लोगों को दो मास व्यतीत हो गये। हम नहीं कह सकते कि युवक ने कुछ वेतन लाकर हरसरन के हाथ पर धरा या नहीं। हां इतना हम जानते हैं कि अब भी हरसरन ही युवक को खिलाता और अपने घर में रखता है।

(३)

आधी रात व्यतीत हो रही थी। चारों ओर अंधेरा छाया हुआ था। थोड़ी वर्षा हो जाने के कारण सर्दी भी चमक गई थी।

आज युवक अभी तक नहीं आया था बच्चा उसकी राह देखते देखते सो गया था और दोनों स्त्री पुरुष बिना सोये युवक की प्रतीक्षा कर रहे थे। इधर कई दिनों से युवक का समय पर आना नहीं हो रहा था। वह बहुत व्यस्त और चिंतित भी रहता था। हरसरन बहुत चेष्टा करने पर भी उसके हृदयगत भावों को नहीं जान सका था। पर वह इतना जरूर समझ गया था कि कुछ भारी भेद अवश्य है। मेरा यह मित्र किसी असाधरण काम में जुटा है। पर वह उस पर उतनी भक्ति रखता था कि वह बिना भेद जाने ही उसका सहायक और समर्थक बन गया था।

लगभग १ बजे युवक आया और धीमेस्वर से कहा, "हर-सरन भाभी को दूसरे कमरे में भेज दो। अभी कुछ दोस्त यहां आयेंगे। एक मित्र घायल हो गया है।"

हरसरन लपक कर व्यवस्था करने लगा। क्षण भर ही में दो व्यक्ति अल्पवयस्क युवक को पीठ पर लादे भीतर घुस आये। यह बेहोश था, उसका एक हाथ बिल्कुल ही उड़ गया था मुह झुलस गया था, और दूसरे दोनों आदमियों में से एक थोड़ा घायल था। उसके वस्त्र कालिख और खून से भरे थे। बेहोश व्यक्ति को चारपाई पर लिटा कर युवक ने हरसरन से कहा--- "दरवाजा बन्द कर दो।"

इसके बाद गर्म पानी करके उन्होंने मूर्छित युवक के घावों को धोया और पट्टी बांधी। दूसरे घायल की भी पट्टी आदि बांधी गई। फिर उन दोनों की पोशाक भी बदल दी गई।

चारों व्यक्ति चुपचाप घायल और बेहोश युवक को घेरे बैठे थे। युवक ने हरसरन से कहा—"भाई हरसरन, अब मैं कुछ भेद तुम पर प्रकट करूंगा। क्या तुम सुनने को तैयार हो?"

हरसरन इसकी प्रतीक्षा ही में था। उसने कहा—"फिक्र न करो, मुझे क्या करना होगा, कहो।"

"भाई हरसरन! तुम्हारे स्त्री बच्चे हैं इस कारण मैंने तुम्हें अलग ही रखना ठीक समझा था, पर अब तुमसे कुछ छिपाना मैं पाप समझता हूँ। परन्तु देखो भाभी को कुछ भी न मालूम होना चाहिये। समझे?"

"ऐसा ही होगा।"

"तब सुनो' तुम अखबारों में बम, खूनखराबी, गोली, पिस्तौल और डाके आदि की घटनाएं पढ़ा करते हो?"

"हां, हां।'

"हमी लोग वह सब करते हैं।"

"मुझे भी शक था भैय्या, मगर......"

"सुनो, मैं सबका प्रधान हूं। देश भर में सैकड़ों हमारे सेन्टर हैं। हमने राज्य सत्ता को जड़ से उखाड़ने का सारा सरंजाम कर लिया है, हमारे पास रुपया भी बहुत जमा है।"

"परन्तु..."

"सुनते जाओ, तुम देखते ही हो कि मैं तुम्हारी कसाले की रोटी खाता हूं और एक पैसा भी मेरे पास नहीं रहता। यह धन देश का है हमारा नहीं। इसकी एक पाई भी अपने काम में लेना

हमारे लिये हराम है। यही हाल मेरे इन मित्रों का है। ये सभी कालिज के उच्च डिग्री प्राप्त बड़े २ खान्दानी रईसों के बेटे हैं। पर ये अपने गुलाम देश की आजादी के लिये करोड़ों भूखों और नंगों के पेट और आबरू की रक्षा के लिए तन मन धन दे चुके हैं। किसी ने ब्याह नहीं किया है। दुःख और मृत्यु इनके लिये कुछ नहीं है। जीवन का मोह ये त्याग चुके हैं। वेदना और प्रलोभन इनसे दूर हैं। ये महात्मा, योगी, तपस्वी देश के बालक हैं। भाभी की हठ और आग्रह से मैं बहुत अच्छा खाता पहिनता हूं। पर मेरे ये प्यारे भाई बहुधा फाके करते या कहीं मेहनत मजूरी करके पैसा मिलने पर चना चबैना खाकर पानी पी लेते हैं।"

हरसरन सकते की हालत में बैठा था। उसने सिर पर से पगड़ी उतार कर युवकों के पैरों पर रख दी। उसके नेत्रों से आंसुओं की झड़ी लग गई। उसने हिचकियाँ लेकर कहा, "मेरा मन कहता था तुम देवदूत हो; अब तुम देवदूतों के सरदार निकले, मैं तुम्हारे पैरों की धूल हूं। मेरा तन मन तुम्हारे लिये है। बाल बच्चेदार हूं तो क्या, मैं प्राणों को कुछ भी नहीं समझता भैया, चाहे जब तुम सबके लिए मेरी चमड़ी हाजिर है, जूते बनवालो। जहां तुम्हारा पसीना गिरेगा वहां मेरा खून गिरेगा।"

युवकों ने उसे छाती से लगाया। अब युवक ने कहा—"जो वीर इस समय मृत्यु-शय्या पर हैं यह एक साहसी रत्न है। यह मां का इकलौता बेटा है, इसकी उम्र १८ वर्ष की है। हम

लोग कुछ भयानक बम के प्रयोग कर रहे थे कि एक बम फट गया और यह वीर इस दशा को प्राप्त हुआ। अब इसके प्राणों की रक्षा सम्भव नहीं दीखती। किसी डाक्टर को भी तो हम नहीं बुला सकते।"

"क्या करना चाहिये यह बताओ?" हरसरन ने बेसब्री से कहा।

इतने में ही मूर्छित व्यक्ति ने जोर २ से साँस लेनी शुरू की। एक युवक बोला—"अब कुछ नहीं हो सकता। हमारा यह वीर भाई जा रहा है, देखो हुचकियां आने लगीं।" वह युवक घुटनों के बल बैठ कर रोगी की पट्टी पर सिर रख बालक की भांति फूट फूट कर रोने लगा। सभी के नेत्र भीगे थे। इधर घड़ी ने तीन बजाये और उधर युवक का प्राण पखेरू उड़ गया!!!

एक युवक ने कहा—"सरदार अब रोने से क्या होगा? अभी तीन बजा है, अभी बहुत काम करना है। साहस करो।"

"अब क्या करना होगा?" हरसरन ने कहा।

"पहली बात लाश को हटाना है, दाह क्रिया तो सम्भव ही नहीं।"

"तब वहा दिया जाय?"

"यही होगा, पर जमुना जी तक लाश जायगी कैसे?"

"लाश को बक्स में बन्द करना होगा।"

"इस समय बक्स लेकर जाना निरापद नहीं।"

हरसरन बोला—"यह काम दिन में होगा और वह मैं कर

लूंगा। दिन में कोई भी न देख पायगा। आप लोग अब सुरक्षित स्थानों में चले जाँय।"

"अब और सुरक्षित स्थान इस समय नहीं है। कल संध्या तक हमें यहीं रहना होगा। मेरे इन मित्रों को संध्या की मीटिंग में भाषण देना है।"

"आज तो सभा बन्दी है, भाषण कैसे होगा?"

"सभा अवश्य होगी और गोलियां भी अवश्य चलेंगी।"

"तुम्हें एक काम करना होगा, हरसरन भाई।"

"कहो।"

"सुबह ही भाभी को कुछ दिन के लिये मायके भेजना होगा।"

"यह हो जायगा। उसके साथ असबाब में मैं लाश को भी अनायास ही ले जाऊंगा।"

"आज और कल दिन हम यहाँ रहेंगे। कोई गैर कानूनी आदमी न आने पावेगा, हमारे साथ बहुत सा सामान भी होगा।"

"मैं उस कमरे को खाली किये देता हूं।"

इसके बाद लाश की उपयुक्त व्यवस्था की गई और ६ बजते बजते तीनों युवक घर से बाहर निकले। इसके आधे घण्टे बाद ही हरसरन एक बड़ा सा ट्रंक और कुछ सामान तांगे पर लाद स्त्री और पुत्र सहित एक ओर को चल दिया।

(४)

"तुम्हारा नाम क्या है?"

"हरसरन दास।"

"इसी मकान में रहते हो ?"

"जी हां ।"

"क्या काम करते हो ?"

"एक फ़र्म में नौकर हूं।"

"तुम्हारे साथ और कौन है ?"

"मैं अकेला हूं। मेरी स्त्री अपने पिता के घर गई है।"

"मुझे तुमसे कुछ बातें करनी हैं।"

"कहिये ?"

"तुम्हारे वे दोस्त कहाँ हैं जो तुम्हारे साथ रहते हैं, अजी वही गोरे २ बाबू। असल बात यह है कि मैं तुम्हारे उन दोस्त का सहपाठी हूं। वे और मैं लाहौर में डी० ए० वी० कालेज में एक साथ पढ़े हैं। मैं दिल्ली आया था, सोचा मिलता चलूं।"

हरसरन को विश्वास नहीं हुआ। उसने अन्यमनस्क होकर कहा, "मुझे कुछ भी मालूम नहीं वे कहां हैं।"

"यह तो बड़े ताज्जुब की बात है, क्या उनके जल्दी लौटने की उम्मीद भी नहीं है ?"

"नहीं" इतना कह कर हरसरनदास उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, "मुझे अब काम पर जाना है।"

आगन्तुक ने सर्प के समान उसे घूर कर कहा—"तुम्हारे दोस्त किस कोठरी में रहते हैं ? आप उसे मेरे लिये खोल दें तो मैं उनके आने तक उनकी प्रतीक्षा में ठहर जाऊं।"

"मेरे पास चाभी नहीं है।"

"मगर उनकी कोठरी कौन सी है ?"

"यहाँ उनकी कोई कोठरी नहीं है ।"

"वे यहीं तो रहते हैं ?"

"यहां वे नहीं रहते।"

"तब कहां रहते हैं ?"

"मैं नहीं जानता। अब आप जाइये, मुझे देर हो रही है।"

आगन्तुक ने हंस कर कहा—"तब तुम मुझे पहचान गये दोस्त। क्यों ?"

"आप कोई हों, मुझे इससे क्या सरोकार है।"

"खैर! जब जान ही गये हो तो यह बात मैं नहीं छिपा सकता कि मैं घर की तलाशी लूंगा। मकान चारों तरफ से घेरा हुआ है, गड़बड़ न करना। मैं तुम्हें भी बादशाह के खिलाफ साजिश करने वालों में गिरफ्तार करता हूं।"

आगन्तुक ने जेब से हथकड़ियां और सीटी निकाली। सीटी बजाई और एक क़दम आगे बढ़ कर हरसरन के हाथों में हथकड़ी डाल दी।

हरसरन ने कहा—"बुरा हो तुम्हारा।"

आगन्तुक ने अपनी रोबदार घनी काली डाढ़ी में से चमचमाते दांत निकाल कर हँस दिया और हथकड़ी की चाभी घुमाते हुए बोला—"अब जिसका बुरा भला होना होगा हो जायगा।" इसी समय चार कान्स्टेबिल और पुलिस के एक इंस्पेक्टर कमरे में घुस आए। हरसरन को एक कान्स्टेबिल के सुपुर्द करके आगन्तुक ने इंस्पेक्टर से कहा—"दो चार भले आदमियों को बुलालो, मकान की तलाशी ली जायगी।"

हरसरन ने चिल्ला कर कहा—"बुरा हो तुम्हारा।"

शीघ्र ही दस, बीस, पचास आदमियों की भीड़ इकट्ठी हो गई। तरह तरह की बातें और तरह २ की भावभंगियां होने लगीं। हरसरन हथकड़ियों से जकड़ा हुआ चुपचाप खड़ा था। किसी भी प्रश्न के पूछे जाने पर वह भरपूर वेग से चिल्लाकर कहता था—"बुरा हो तुम्हारा।"

तलाशी में बहुत से तेजाब, बम बनाने के खोल, बहुत से कील पुर्जे, तार, बटेरियां और धातुओं के टुकड़े बरामद हुए। हरसरन से अधिक उत्तर पाने से निराश हो कर पुलिस उसे लेकर दल बल सहित थाने को चली। उस दिन के अखबारों में बम फैक्टरी के भेद उद्घाटन की बड़ी लम्बी चौड़ी भूमिका छपी।

(५)

पुलिस की हिरासत में हरसरनदास निर्विकल्प बीज रूप पड़ा था। पुलिस के अफ़सर आकर नर्मी से पूछते—"क्या तुम्हें किसी चीज की जरूरत है ? तुम अपना बिस्तरा मंगा सकते हो, किसी से मिलना चाहो तो मिल सकते हो, पत्र लिखना चाहो तो वह भी कर सकते हो।"

छोटे अफ़सर आकर उसके पास बैठ जाते, पूछते—"कहो अब तुम्हारे वे बदमाश दोस्त कहां हैं ? जिन्होंने तुम जैसे सीधे सादे ग़रीब आदमी को फँसाया। हम जानते हैं कि तुम बेक़सूर हो, पर भाई तुम इसके सुराग़ हो, सांस गांस बताओ तो कुछ पता चले। हमारा काम अपराधियों को पकड़ना है,

भले मानसों को सताना नहीं। देखो भाई पुलिस को लोग नाहक़ बदनाम करते हैं कि आसामियों को सताती है। क्या तुम्हें कुछ तकलीफ है? तुम चाहे जिससे मिलो, पत्र लिखो, खाओ, पिओ, अपने कपड़े मंगाओ, तुम्हें छुट्टी है।"

ये सारी बातें हरसरन मानों पत्थर की मूर्ति की भांति सुनता हुआ जड़वत बैठा रहता और एकाएक गर्ज कर कहता—"बुरा हो तुम्हारा।" बड़े साहब और छोटे साहब भी यही जवाब पाते। डिप्टी सुपरिन्टेन्डेण्ट और खान बहादुर को भी यही जवाब था। जमादार, इन्सपेक्टर, सिपाही सभी को यही जवाब था, "बुरा हो तुम्हारा।"

इस जड़ पदार्थ से कुछ मतलब हल होगा, इसकी आशा किसी को भी न रही। बार २ 'रिमाण्ड' लिया गया, अन्त में पुलिस असलियत पर आई। एक दिन दो भीमकाय कांसटेबिल हवालात में घुस आए। हरसरन दीवार की ओर मुंह किए पड़ा था। कांस्टेबिलों ने पुकार कर कहा—

"क्यों दोस्त, सोते हो या जागते हो?"

हरसरन ने बिना विलम्ब-बिना हिले डुले कहा—"बुरा हो तुम्हारा।"

"अरे यार, सिगरेट बीड़ी पीओ, लो।"

हरसरन का वही जवाब था। अब एक ने जोर से ठोकर लगा कर कहा—"साले बुरा तेरा होगा, फांसी पर जब चढ़ेगा। खड़ा हो।" दूसरे कांस्टेबिल ने उसकी गर्दन पकड़ कर अनायास ही उसे उठा लिया और कहा—"किसका बुरा हो? सीधा

बैठ और जवाब दे कि यार लोग कहाँ कहाँ हैं और कौन कौन हैं ?"

हरसरन चुपचाप बैठ गया। दोनों कांस्टेबिलों ने उसे भरपूर मार दी। इस बार उसने अपना वह 'पेटेण्ट' शब्द भी उच्चारण करना त्याग दिया। वह चुपचाप निर्जीव माँस के लोथड़े की भांति तमाम मार चुपचाप सह गया। इसके बाद उसके दोनों हाथ चारपाई के नीचे दबा कर दोनों काँस्टेबिल उस पर बैठ गए और भांति २ के प्रश्न पूछने लगे। वेदना से उसकी आँखें निकलने लगीं, प्यास से कण्ठ लटपटा गया। धीरे धीरे सारा दिन व्यतीत हो गया। भूख, प्यास, नींद, और वेदना सभी ने उसके साधारण क्षुद्र शरीर पर पूर्ण वेग से आक्रमण किया। पर क्या शंकर की आत्मा उस पर अवतीर्ण हुई, या कोई पिशाच उसे सिद्ध था, वह निर्लेप निर्विकार उस वेदना को बिना एक बार उफ़ किए सहन कर रहा था। जब नींद के झोंके आते, वे दोनों राक्षस उसके कान या गर्दन पकड़ कर झकझोर डालते, उसके नाखूनों में पिन चुभाते, उसके मलद्वार में लकड़ियां ठूंसते, और साधारण मार को तो चर्चा करने की आवश्यकता ही नहीं।

एक रात भी बीती और एक दिन भी। कांस्टेबिल बदलते गए। जो आते वे सोडा चाय बर्फ मिठाई उड़ाते और अट्टहास के साथ उसका उपहास करते।

अन्ततः पुलिस हार गई। उसे जो कुछ भी प्रमाण मिल सके उसे लेकर केस का चालान कर दिया। २१ दिन तक भयानक

यन्त्रणा और पीड़ा को भोग कर उस रौरव नरक के समान हवालात से वह अर्धमूर्छितावस्था में बाहर निकाला गया। उसका शरीर गिरा पड़ता था, पर उसे पकड़ कर मोटर लारी में बिठाया गया और वह जिला मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया। मार से उसका होंठ सूज गया था और आंख के पास घाव हो गया था। छाती और पीठ पर मार के अनगिनत निशान और सूजन थी। दो कांस्टेबिलों ने उसे घसीट कर कर मजिस्ट्रेट के सामने खड़ा किया।

मजिस्ट्रेट ने पूछा—"तुम्हारा नाम?"

"................"

"अरे, तुम्हारा नाम क्या है?"

"................"

"क्या यह गूंगा है या बीमार है?" मजिस्ट्रेट ने कोर्ट इन्सपेक्टर से पूछा।

"हुजूर यह पूरा मक्कार और मगरा है।"

मजिस्ट्रेट ने उससे फिर पूछा—

"तुम्हें कुछ कहना है, कुछ शिकायत है?"

हरसरन ने एक बार मजिस्ट्रेट की ओर सिर उठाकर देखा और चिल्ला कर कहा—"बुरा हो तुम्हारा।"

मजिस्ट्रेट ने गंभीरता पूर्वक कुछ लिखा और उसे जेल में भेज देने की आज्ञा प्रदान की। हरसरन एक नरक से दूसरे नर्क में गया।

(६)

"टिक, टिक, टिक!"

"टिक, टिक, टिक !!"

हरसरन ने काल कोठरी में पड़े २ सुना—बगल की किसी कोठरी से शब्द आ रहा है।

"टिक, टिक, टिक !"

"टिक, टिक, टिक !!"

वह उठकर बैठ गया। काल कोठरी में बन्द हुए उसे आज सातवां दिन था। इस बीच में उसे केवल एक बार मनुष्य की सूरत देखने को मिलती है। जब वह शौचादि के लिए २० मिनट के लिए कोठरी से बाहर निकाला जाता है। पर मनुष्य का कण्ठ स्वर उसने सुना ही नहीं। वह ध्यान से सुनने लगा। ठहर ठहर कर कोई दीवार ठोक रहा था। कुछ देर ध्यान से सुनकर हरसरन ने भी उंगली से ठोका—

"टिक, टिक, टिक !"

उधर से आवाज आई—"क्या तुम भी कोई दुखिया कैदी हो ?"

हरसरन के मुख पर उसके स्वाभाविक शब्द आए, होठ फड़के, पर उन्हें रोक कर कहा—"हां और तुम ?"

"मैं भी, मुझे खड़ी बेड़ी दी गई हैं। क्या तुम किसी राज-नैतिक मामले में हो ?"

"हां, और तुम ?"

"मैं भी, तुम्हारा नम्बर?"

"३०, और तुम्हारा ?"

"१८, क्या तुम्हें बाहर का कुछ समाचार मिलता है?"

"नहीं, और तुम्हें ?;'

"मुझे मिलता है, मैंने चालाकी से काम लिया है तुम कब से इस कोठरी में हो ?"

"नौ दिन से, और तुम ?"

'मुझे चौथा दिन है। चुप, कोई आता है।"

"तुम्हारा भला हो।"

हरसरन चुप हो गया।

आधी रात बीत गई। जेल में सन्नाटा था, हरसरन मच्छरों और जुओं एवं सील और दुर्गन्ध से तंग छटपटा रहा था। शब्द हुआ

"टिक् टिक् टिक्"

"तुम्हारा नम्बर ?"

"१८ और तुम्हारा ?"

"३०, क्या अभी तक जागते हो ?"

"हां कोई नई खबर है ?"

"मुझे तुम्हारा नाम मालूम हो गया है, क्या तुम्हें पीटा भी जा रहा है ?"

"हां"

"कल जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट जेल का मुआयना करेंगे, उनसे शिकायत करना।"

"शिकायत करना मैं अपमान समझता हूं।"

"फिर चुपचाप कब तक सहोगे ?"

"जब तक वे कष्ट देंगे।"

"एक और खबर है।"

"क्या ?"

"तुम्हारी स्त्री आई है।"

"ऐं ? कब ?"

"कल। वह तुम्हें जमानत पर छुड़ाने की चिन्ता में है।"

"सच ?"

"हां, सुनो ?"

"कहो ?"

"मुलाक़ात करोगे ?"

"किससे ?"

"अपनी स्त्री से।"

"कैसे होगी ?"

"मैं करा दूंगा।"

"तुम ?"

"अफ़सर जेल को मैंने चांदी के टुकड़ों से वश में कर लिया है।"

"छी; ऐसे थे तो जेल क्यों आये ?"

"सब लोग तुम्हारी तरह लोहे के कैसे बनेंगे दोस्त ?"

"मैं मुलाक़ात नहीं करूंगा।"

"सुनो।"

"कहो।"

"कल शिकायत जरूर करना।"

"हरगिज नहीं।"

इसके बाद हरसरन ने कहा—"सुनो"

उधर से जवाब नहीं आया। हरसरन ने संकेत किया: 'टिक—टिक् टिक्। उसका भी उत्तर नहीं आया। वह चुपचाप आकर फिर कम्बल पर पड़ गया।"

दिन निकल आया। जेल वार्डर गश्त लगा कर चला गया। शब्द हुआ।—

"टिक् टिक् टिक्"

हरसरन ने दौड़ कर शब्द किया—"टिक् टिक् टिक्"

"१८ ?"

"हां, क्या २० ?"

"हां,"

"क्या तुम्हें कोई नई सूचना मिली है ?',

"नहीं, तुमने कुछ सुना है ?"

"बहुत कुछ, मगर साहस न खोना।"

"कहो मैं सुनने को तैयार हूँ।"

"तुम्हारी स्त्री ने सब बता दिया है।"

"क्या ???"

"उत्तेजित न हो—क्या तुम उस भेद से अनभिज्ञ हो ?"

"कौन सा भेद ?"

"मैं उस भेद की बात नहीं कहता जिस मामले में हम यहां आये हैं।"

"किस भेद की बात कहते हो ? बोलते क्यों नहीं ?"

"तुम्हारी स्त्री और दोस्त के गुप्त प्रेम का भेद।"

"दुष्ट, कुत्ता।!

"गाली बकने से क्या होगा? बहुत सी बातें मालूम हुई हैं।"

"कौन बातें?"

"तुम्हारे बच्चे की बात।"

"उसकी क्या बात मालूम हुई।"

"उसे तुम्हारा दोस्त क्यों इतना प्यार करता है, जानते हो?"

"क्यों नहीं, वह उसे अपने बच्चे के समान ही समझता है।"

"समझता नहीं, वह उसी का बच्चा है।"

"झूठे, बेईमान पाजी! दूर हो। मैं तुमसे बात न करूंगा।"

"फिर बातें कैसे खुलेंगी, मैंने कहा था आपे से बाहर न होना।"

"तुम धूर्त, झूठे और बेईमान हो।"

"क्या सबूत देखोगे?"

"तुम्हारा बुरा हो। दूर हो तुम"

हरसरन दीवार के पास से हट आया। कई बार खट खट हुई, पर सब व्यर्थ। हरसरन ने फिर उधर ध्यान नहीं दिया। उसके बदन में आग सी लग गई। हे ईश्वर! क्या यह सच है? वह सीधा सादा युवक तेज और त्याग का मूर्तिमान अवतार, पवित्र जीवन और तपस्या का धुरी क्या ऐसा कुकर्म करेगा? मैंने अपनी जायदाद मिट्टी में मिलाई, घर द्वार छोड़ा, उसके लिये अधम नौकरी की, इसलिये कि मैं उसके त्याग पर, देश-प्रेम पर मोहित था। वह देवदूत की भांति बोलता था। स्वर्गीय प्रभा उसके नेत्रों में थी। मैं मूर्ख क्या उसके लिये इतना भी न

करता। वह देश की सेवा में संलग्न था, मैंने स्वयं को उसकी सेवा में संलग्न किया। वह देश के लिये सर्वस्व त्याग चुका था और मैंने उसके लिये सर्वस्व त्यागा ! सो क्या इसी लिये ? नहीं, नहीं, ऐसी बातें सोचना भी पाप है ! सर्प देवता हो सकता है पर देवता सर्प नहीं हो सकता। उसका पुत्र ? रामराम, क्या मेरी स्त्री व्यभिचारिणी है ? व्यभिचारिणी की आंखें ऐसी होती हैं ? व्यभिचारिणी क्या इस तरह हँसा करती है ? ऐसी तत्पर और निःसंकोच होती है ? हे ईश्वर ! मैं क्या सोच रहा हूं। आज मैंने समझा कि मेरी आत्मा कितनी पापी है। हां, यह हो सकता है कि वह मुझसे हजार गुना अधिक उसे प्यार करती हो। वह इस योग्य है। पर वह प्यार अपवित्र हो हो सकता है ? उसका पुत्र ? उसका पुत्र ?? हरसरन ने अपने सिर में ५–७ घूंसे मारे। उसने कपड़े फाड़ डाले और वह भूमि पर लोटने और तड़फने लगा। इसके बाद वह दीवार के पास गया। टिक् ३ शब्द किया। एक बार दो बार तीन बार, पर कुछ भी उत्तर नहीं आया। वह तड़पती हुई मछली की भांति भूमि में पड़ा बिलखता रहा। उसने आघातों से शरीर को क्षत विक्षत कर लिया। इसी भांति मर्मवेदना में उसकी रात्रि व्यतीत हुई। दिन आया और गया। खाना पीना भी उसने छोड़ दिया। वह सैकड़ों बार दीवार के पास गया टिक् ३ किया पर कुछ भी उत्तर न प्राप्त हुआ। अब वह दीवार से सिर टकराने और जोर से चिल्लाने लगा। तीन दिन बीत गये। हरसरन चुपचाप धरती पर पड़ा था—शब्द हुआ "टिक् टिक् टिक्,

वह भूखा प्यासा अधमरा हरसरन सिंह की भांति झपटा।

उसने तनिक उत्तेजित स्वर में कहा—

"तुम हो १८ नम्बर ?"

"हां, ईश्वर का धन्यवाद है तुम यहीं हो। क्या तुम्हें भी कोई सजा मिली ?"

नहीं, तुम कहां थे ?"

"खड़ी बेड़ी पर लटका दिया गया था।"

"क्यों ?"

"तुमसे बातें करने और खबर मंगाने के अपराध में।"

"पर तुम झूठे हो।"

"अभागे भाई, मालूम होता है तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है।"

"तब सबूत दो।"

"सबूत पीछे लेना पहले नई खबर सुनलो।"

"नई खबर क्या है ?"

"वे दोनों आज रात पकडे गये हैं।"

"कौन दोनों ?"

"तुम्हारी स्त्री और मित्र"

"फिर वही बात ? दुष्ट !"

"वे दोनों रात को एक ही कमरे में थे !"

"तुम्हारा नाश हो।"

"तुम्हारी स्त्री ने पुलिस को संकेत करके बुला लिया।"

"झूठे बेईमान।"

"वह पुलिस से मिल गई है। पुलिस ने उसे बड़ी रकम दी है।"

"नीच, पाजी चुप रहो।"

"अभागे भाई! शोक है तुम्हारा दिमाग खराब है। तुम्हें बड़ी मर्मवेदना हो गई है।"

"सूअर, मैं तुम्हें देखते ही मार डालूंगा"

"कुछ चाहते हो?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ मांगना चाहते हो?"

"कुछ नहीं।"

"अब शायद हमारी मुलाकात नहीं होगी।

"क्यों?"

"मैं आज ही रात को दूसरी जगह भेज दिया जाऊंगा, ऐसा प्रतीत होता है।"

"और सबूत?"

"सबूत देखा चाहते हो?"

"नहीं कदापि नहीं, जाओ, मुलाकात की कुछ जरूरत नहीं है।"

हरसरन वहां से हट आया। दो तीन बार टिक्‌ २ शब्द हुआ। हरसरन ने वहां कान नहीं दिया। वह दोनों हाथों पर सिर रख कर औंधे मुंह पड़ रहा। वह कुछ सोच रहा था। उसके मस्तिष्क में सारे शरीर का खून इकट्ठा हो गया था। वह मानो जेल की छत, आकाश, स्वर्ग, सूर्य मंडल, ब्रह्माण्ड सभी को भेदन करके ऊंचा और ऊंचा उड़ा चला जा रहा था। दिन निकल आया। पर हरसरन उसी दशा में पड़ा रहा। उसको

कपड़े फट गये थे और शरीर क्षत विक्षत हो गया था। उसने तीन दिन तक कुछ खाया न था।

वह दिन भर यों ही पड़ा रहा। बीच में डाक्टर और जेल के अधिकारी उसे देखने आये। वह किसी से कुछ नहीं बोला। धीरे २ रात हुई और वह क्रमशः गम्भीर होती गई। फिर ध्वनि आई— "टिक् टिक् टिक्"

हर सरन झपट कर वहाँ पहुंचा।

"तुम झूठे लवार, दुष्ट।"

"आह, क्या तुम्हारा सिर बिल्कुल फिर गया है। शान्त हो भाई, बहुत बुरी खबर है, क्या तुम्हें देखने डाक्टर नहीं आया?"

"कौन सी ख़बर है, कहो, कहो!"

"वह कहने योग्य नहीं।"

"कहो, अरे दुष्ट कहो।"

"मैं तुम्हारी गालियों का बुरा नहीं मानूंगा। ईश्वर तुम्हें शान्ति दे, क्या तुम उस खबर को सुन सकते हो।"

"कह, अरे पाजी कह।"

"उसने स्वीकार कर लिया।"

"किसने?"

"तुम्हारे मित्र ने।"

"क्या?"

"कि वह तुम्हारी पत्नी का जार है और वह उसकी रखेली है।"

"उसका नाश हो, अब चुप रहो।"

"सुनो, एक बात कहता हूं।"

"कुछ कहने की जरूरत नहीं है, भागो यहां से।"

"सुनो भाई, मैंने एक निश्चय किया है। अब मैं नहीं सहन कर सकता, मैं अभी चला जाऊंगा। फिर अब मुलाक़ात नहीं होगी।"

"जाओ जहन्नुम में। तुमने क्या निश्चय किया है?"

"वही तुम भी करो। विश्वासघाती को मजा चखादो।"

"क्या? क्या??"

"मुख़बिर हो जाओ।"

"हरामी, विश्वासघाती, दूर हो।"

"तब फांसी पाओगे। जिसने तुम्हारे जैसे मित्र विश्वासी की स्त्री को बिगाड़ा, धोका दिया। उसे, तुम्हारी जगह मैं होता तो अवश्य फाँसी पर लटकवाता।"

"अरे झूंठे दूर हो।"

हर सरन वहाँ से लौट आया। कुछ ही देर बाद उसने शब्द किया—"टिक् टिक् टिक्।" कोई भी उत्तर नहीं आया। अब वह बड़ी तेजी से उस छोटी सी दुर्गन्धित कोठरी में चक्कर काटने लगा। उसकी आंखें फटी पड़ती थीं। मुट्ठियाँ बंद थीं और वह दांत मिसमिसा रहा था। वह जोर २ से पैर पटकता फिरता था। एक बार गत दस वर्ष का जीवन चित्रपट की भान्ति उसकी आंखों के सामने फिर गया। कैसे उसका विवाह हुआ था, उसने कैसे अपने मित्र से अपनी पत्नि की भेंट कराई थी; वे दोनों कितना शीघ्र घुल मिल गये, घण्टों बैठे गप्पे लड़ाते

थे। मैं काम पर जाता वे दोनों घर रहते। क्या यह सम्भव हो सकता है कि दोनों में बुरा सम्बन्ध हो? फिर जब बच्चा हुआ तो वह कहा करती थी कि इसकी सूरत तुम्हारी जैसी नहीं तुम्हारे मित्र के जैसी है। क्यों? बच्चे ?? क्यों ??? हाय यह मैंने कभी नहीं सोचा, सदा हंस कर टाल दिया। आज अब इसे समझ कर ही रहूँगा। उसकी सूरत उसके समान क्यों है? और वह क्यों यह बात बार बार कहा करती थी। और क्यों वह उसे सदा इतना प्यार करता था ?? ठहरो मैं अभी इसका मूल कारण समझ लूंगा। इतना कह कर वह जोर २ से सिर में और छाती में घूंसे मारने लगा। इसके बाद उसने दीवार में टक्करें मारनी शुरू कीं और फिर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश में आने पर वह कुछ क्षण चुपचाप पड़ा रहा। फिर उठ कर बेचैनी और घबराहट में टहलने लगा। अब वह बड़-बड़ा रहा था—मैं उसे मार डालूंगा और उसे भी। मैं सभी को मार डालूंगा। विश्वासघाती, वंचक, चोर!!! इस बार उसने बड़े वेग से अपने शरीर को चीर कर कई घाव कर लिए। अब वह दीवार के पास जाकर टिक् टिक् टिक् शब्द करने लगा। पर उत्तर न मिला। इसके बाद वह दीवार पर मुख रख कर जोर २ से चिल्लाने और दीवार पर घूंसे मारने लगा। वार्डर और जेल अधिकारियों के बहुत चेष्टा करने पर भी उसके भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। दिन समाप्त हुआ और रात्रि आई। वह उसी भाँति दीवार में घूंसे मारता और चिल्लाता रहा। वह बारम्बार ३० नम्बर को गालियाँ देने लगा।

रात ज्यों ज्यों ढलने लगी, वह शिथिल होता गया। अन्त में वह बेहोश होकर गिर पड़ा। वह इस बार खूब सोया।

धूप चढ़ गई। दोपहर हो गया। हरसरन उठ कर बैठ गया। कुछ देर वह सोचता रहा। इस समय वह बहुत सौम्य स्थिर और गम्भीर था। उसने एक बार बहुत सापेक्ष दृष्टि से चारों ओर देखा। फिर वह बड़ी देर तक उस दीवार की ओर देखता रहा। एक बार वह उठ कर दीवार की ओर चला भी। पर बीच ही से लौट आया। इस बार उसने वार्डर को पुकार कर कहा, "अभी इसी वक्त बड़े साहब के पास मुझे ले चलो। मैं मुखबिर होऊंगा।"

जेल में हलचल मच गई। फ़ोन पर फ़ोन होने लगे। अधिकारी वर्दियां कसने लगे। वार्डर और सिपाही चुस्ती से नाकों पर खड़े हो गये। तमाम क़ैदियों को अपने २ बारक में बन्द होने का हुक्म दे दिया गया। रास्तों और दर्वाजों की सफ़ाई की जाने लगी। कुछ ही देर में पुलिस के उच्चाधिकारी, मजिस्ट्रेट और जेल सुपरिन्टेंडेन्ट की मोटरें जेल के फाटक पर आ लगी। भूखा, नंगा, पागल और सर्वांग में क्षत विक्षत हरसरन बाहर निकाला गया। वह चल नहीं सकता था। दो सिपाही उसे सहारा देकर लाये। आफ़िस में आकर वह गिर गया। उसे होश में लाया गया। डाक्टर ने कुछ शक्तिवर्धक दवा दी। जेल सुपरिन्टेन्डेन्ट ने उसे कुर्सी पर बिठाया। धीरे २ होश में आकर उसने चारों ओर देखा। वह कुछ बड़बड़ा रहा था। मजिस्ट्रेट ने पूंछा—"क्या तुम सरकारी गवाह बन कर शाही क्षमा चाहते हो?"

"मैं मुखबिर बना चाहता हूं ! मुखबिर !"

"क्या तुम बयान दे सकते हो ?"

"तुम लोग क्या चाहते हो ?"

"हम लोग तुम्हारा बयान लेना चाहते हैं ।"

"क्या तुम उसे फाँसी दे दोगे ?"

"यह बात तो कानून के हाथ में है ।"

"उसे फाँसी दे दो ।"

"तुम जो कुछ जानते हो सब सच २ बयान करदो ।"

"मुझे क्या मिलेगा ?"

"क्षमा, तुम्हें क्षमा कर दिया जायगा ।"

हर सरन के होठों पर हंसी आई । उसने कहा—"मेरे पास एक सबूत है, उससे सब काम सिद्ध हो जावेंगे । मुझे घर ले चलो । मैं तुम्हें एक ऐसी चीज़ दिखाऊंगा जो कभी किसी ने न देखी होगी ।"

अधिकारी गण ने परामर्श किया । पुलिस का दल तय्यार किया गया सभी उच्चाधिकारी साथ चले । मौहल्ले में सन्नाटा छा गया । लोग भीत चकित दृष्टि से इस प्रबल दल को देखने लगे । घर में ताला लगा था । उसे तोड़ डाला गया । घर के भीतर जाकर हरसरन पागल की भांति जल्दी २ घर में घूमने लगा । एक बार वह पलंग के ऊपर लेट कर हंसने लगा । दूसरी बार उसने आल्मारी की दराज़ खोल कर उसमें से एक बढ़िया कोट निकाल कर पहन लिया पर तत्काल ही उसे फेंक दिया ।

अधिकारी सतर्क होकर उसकी चेष्टा देख रहे थे । पर किसी ने भी उसकी चेष्टा में कोई बाधा नहीं दी । वह इधर उधर घूम

घूम कर हंसता, कभी बड़बड़ाता और कभी इधर की चीज़ें उधर फेंकता रहा। इसके बाद वह अपनी पत्नि और पुत्र की तस्वीर के सामने जा खड़ा हुआ। इस बार वह फूट फूट कर रोने लगा। उसने तस्वीर को छाती से लगा लिया। वह बहुत रोया।

अन्त में एक अधिकारी ने कहा—"जिस काम के लिये आये थे, उसका भी तो खयाल रखो। वह सबूत ?"

"हाँ, वह सबूत !" उसने तस्वीर दूर फेंक दी और वक्र दृष्टि से बड़ी देर तक अधिकारी को घूरता और बड़बड़ाता रहा। फिर उसने कहा—"अच्छी बात है, तब तुम उसे फांसी दोगे ? अब मैं तुम्हें सबूत देता हूँ जो किसी ने नहीं दिया होगा। मैं अब मुखबिर हूं।"

इसके बाद उसने एक आलमारी का ताला तोड़ डाला और उसमें से एक छोटी सी सन्दूकची निकाली। अधिकारी सतर्क हो गये। क्या आश्चर्य है पिस्तौल या बम से हमला करदे। बक्स को तोड़ कर हरसरन ने एक छोटी सी शीशी निकाली और उसे अधिकारियों को दिखाते हुए कहा—

"यह बड़ा भारी सबूत है। मैं अभी तुम्हें दिखा दूंगा कि इसमें क्या करामात है। तुम लोग अपनी अपनी जगह पर खड़े रहो। इतना कह कर देखते ही देखते उसने शीशी को मुंह में उंडेल लिया और शीशी फेंक दी।

अधिकारी गण अब समझे और एक दूसरे का मुंह देखने लगे। हरसरन हंसने लगा। हंसते २ कहा—"बुरा हो तुम्हारा तुम क्या मुझे यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि उसने मेरी स्त्री को कुमार्गगामिनी बनाया ? यह असम्भव है। पर यदि उसने

ऐसा किया भी हो तो मैं उसे क्षमा करता हूँ। वह देश का प्यारा पुत्र है। मैंने सब कुछ उसे दिया तो स्त्री पुत्र भी सही। इसके बाद उसका सर्वांग काँपने लगा और वह वहीं धरती पर गिर पड़ा। अभी तक उसे होश बाकी था। एक अधिकारी ने आगे बढ़ कर कहा—"यह तुमने क्या किया ?"

"प्रायश्चित ! क्योंकि कल रात से मैं उसे विश्वासघाती समझने लगा था ! जाओ तुम्हारा बुरा हो।"

इसके कुछ क्षण बाद ही उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

लौह-पुरुष

(:-:—:—:)

बापू बैठे आलू काट रहे थे। आश्रम की दो बालिकायें भी बैठी यही कर रहीं थीं। बापू बीच बीच में कुछ कह देते थे, इसे सुन कर बालिकायें खिलखिला कर हँस पड़ती थीं। धरती कच्ची थी और वह स्वच्छ गोबर से लिपी हुई थी। वहां चटाई भी न थी। बापू जमीन पर पलौथी मारे बैठे थे। मोटी बल्लियों पर फूंस का छप्पर सिर पर था। बापू की कमर में स्वच्छ खद्दर का टुकड़ा लिपटा था जिससे उनका घुटनों तक का अंग ढका था। शेष सब अंग नग्न था। एक छोटी सी माला उनके कण्ठ में थी और मस्तक पर रोली का तिलक। उनके शरीर की हड्डी पसलियां प्रत्यक्ष दीख पड़ती थीं। जब वे हंसते थे तब उनके आगे के टूटे दोनों दांत अद्भुत प्रतीत होते थे। उनकी आंखों पर एक भद्दा सा चश्मा चढ़ा था उस चश्मे में होकर उनकी असाधारण आँखें निरन्तर चमक रही थीं। उनके कान विचित्र और बड़े बड़े थे। वे उनकी बालों से रहित खोपड़ी पर ऊपर से चिपकाये से प्रतीत होते थे। उनके हँसने के समय उनके मुख पर अनेक सिकुड़नें पड़ जाती थीं। वे धीरे धीरे किन्तु जल्दी जल्दी बोलते थे। वे चौकन्ने से बैठे थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो उनके शरीर भर में नेत्र हैं और

उनकी अबोध गति है। वे क्षितिज तक जो कुछ हो रहा है, सभी देख रहे हैं।

सुशील ने एक युवक के साथ वहीं पहुंच कर इस महापुरुष को प्रथम बार देखा और उसके चरणों में सिर नवाया। बापू ने मुस्करा कर कहा, "अभी आ रहे हो क्या? जवाहर का पत्र तो मुझे मिल गया था, पर उनमें तो अपर्याप्त परिचय था, अच्छा बैठो।"

सुशील बैठ गये। वे उस महान लोह पुरुष को प्रत्यक्ष सामने देखकर भांति भांति के विचार करने लगे। वे कुछ बोल ही न सके।

बापू कुछ देर ठहर कर हंस दिये। उन्होंने कहा—

"यहाँ क्यों आये हो?"

सुशील ने विनयपूर्ण स्वर में कहा—"मेरी इच्छा कुछ समय आश्रम में रह कर यहां जीवन का अभ्यास करने की है।"

"तुम्हारी इच्छा या जवाहर की?" वे फिर खिलाखिला कर हँस पड़े।

"मैंने अपने आपको उनके सुपुर्द कर दिया है। मैं उन्हीं के आदेश से आया हूँ।"

"अब तक कहाँ थे?"

बापू ने एक भेद भरी तेज दृष्टि से सुशील की ओर देखा। सुशील कुछ उत्तर न दे सके वे स्वयं इस प्रश्न का उत्तर अपने हृदय में नहीं पाते थे।

बापू ने फिर पूछा—

"यहां के जीवन का अभ्यास करके क्या किया चाहते हो?"

"देश सेवा"

"देश सेवा?" बापू गम्भीर हो गए। उनके माथे में बल पड़ गये। होंठ सिकोड़ कर उन्होंने एक आलू के चार टुकड़े कर डाले। इसके बाद उनके मुख पर फिर मुस्कराहट आई। उन्होंने कहा 'देश सेवा किस लिए?' सुशील के पास इसका भी कोई उत्तर न था। वे चुपचाप बापू के प्रश्न का आशय समझने की चेष्टा करने लगे।

बापू ने हंसकर सुशील की ओर देखा। सुशील लजा गये। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—"बापू, परीक्षा न लीजिये, मुझे मार्ग बताये, मुझे कुछ काम दीजिये।"

बापू कुछ क्षण तक सुशील की ओर देखते रहे। उसके बाद वे चुपचाप आलू काटने लग गए।

एक गम्भीराकृति पुरुष ने प्रविष्ट होकर कहा—"बापू, पट्टनी जी आ रहे हैं। क्या यहीं ले आऊँ।"

"हां, हां, पर एक चटाई तो डाल दो।"

एक भव्य मूर्ति ने प्रविष्ट होकर प्रणाम किया। उसकी धवल लम्बी दाढ़ी, तीखे नेत्र, उभरी हुई नाक, सम्पुटित ओष्ठ उसके महान व्यक्तित्व का परिचय दे रहे थे। बापू मानो अभी सुशील ही से बातें कर रहे हैं। इस परम प्रभावान व्यक्ति से तनिक भी प्रभावित न होकर वे उसी भांति हँस दिये, कहा—"मैं तो कल से आपके आने की प्रतीक्षा में था। कहिए, राज्य में आपने शिक्षा-विस्तार की जो नई योजना की है वह कैसी सफल हो रही है?"

पट्टनी जी ने चिन्तित स्वर में कहा—'सफल हो रही है, नहीं कह सकता। यदि मालवीय जी का हिन्दू विश्वविद्यालय सफल है तो मेरी योजना भी सफल है। किन्तु महात्मा जी मेरा चित्त इससे सन्तुष्ट नहीं।'

महात्मा ने मुस्कराहट से पूछा "क्यों? सन्तुष्ट क्यों नहीं है।"

"मैं देखता हूं कि हमारी शिक्षा की आत्मा विदेशी है। वह हमारे बाह्य जीवन पर प्रभाव डालती है, अभ्यन्तर पर नहीं। उसे प्राप्त करके हम केवल बाह्य संसार में उच्च पद प्राप्त कर सकते हैं, वैज्ञानिक अनुसन्धान कर सकते हैं, किन्तु आत्म-तुष्टि नहीं प्राप्त कर सकते।"

महात्मा जोर से हंस पड़े। बालिकायें उसी समय उठकर चली गई। आलुओं की टोकरी एक व्यक्ति उठा ले गया। दूसरे व्यक्ति ने चरखा उनके सामने रख दिया। बापू की उँगलियाँ चरखे पर नाचने लगीं। कुछ क्षण बाद वे बोले—"अब आप कितना बारीक सूत कात सकते हैं?" पट्टनी जी ने स्कूल के सुघड़ विद्यार्थी की भांति जेब से एक सूत की गुच्छी निकाल कर हंसते हंसते कहा—'यह देखिये, यह मेरा आज ही का काता सूत है।'

एक युवक ने आकर धीरे से सूचना दी—राजगोपालाचार्य जी आ रहे हैं। दूसरे ही क्षण एक अद्भुत व्यक्ति धीरे २ मानों तोलते २ पांव रखते हुए आया। उसके छोटे और गृद्ध जैसे तीव्र नेत्र, नीले रंग के चश्मे से ढंके थे, सिर और दाढ़ी मूंछ मुड़े थे। बलिष्ठ और चौड़ा जबड़ा, आगे को उठी हुई

नोकदार नाक, उनकी दृढ़ता, गम्भीरता और एकनिष्ठता का परिचय दे रही थीं। उनके आते ही बापू खूब जोर से खिलखिला पड़े। इसके बाद उन्होंने घड़ी की ओर देखकर कहा—"समय तो हो गया है, क्या सब लोग आ रहे हैं ?"

एक सौम्य मूर्ति ने धीरे २ भीतर प्रवेश किया। उसके मुख का सौन्दर्य आश्चर्यजनक था। वह स्वच्छ खद्दर की साड़ी लपेटे थी, उसके पैर नंगे थे, शरीर पुष्ट किन्तु कोमल था। आंखें नीली और स्वच्छ थीं। उसके हाथ में एक थाल था, उसपर एक सफेद खद्दर का रूमाल पड़ा था, उसने बापू के सामने बैठकर थाल रख दिया। बापू ने मुस्करा कर कहा—"क्या इसका समय हो गया मीरा ?"

"हाँ बापू" उसने उठा-उठाकर एक-एक कटोरा बापू के हाथ में दिया। बापू ने अपना भोजन आरम्भ किया। दही, छुहारा, कुछ फल आदि थे। बापू खा रहे थे, बातें करते जाते थे। हास्य उनकी बातों का सम्पुट था। इसी बीच २०-२५ व्यक्तियों ने एक बारगी ही उस छप्पर में प्रवेश किया। सरोजनी ने चिल्ला कर कहा, "यह क्या खा रहे हो बापू ?" उन्होंने हंसकर कहा—"अब क्या धरा है, सब खा पी चुका।" सभी यथा स्थान बैठ गये। मीरा सामने बैठी मक्खियां उड़ा रही थी। बापू का भोजन समाप्त होते ही वह पात्र लेकर चली गई।

एक बारगी ही गम्भीर बातचीत आरम्भ हो गई। राजगोपालाचार्य ने कहा यही समय है कि हमें असहयोग का युद्ध छेड़ देना चाहिए। हम एक क्षण भी अब नहीं ठहर सकते।'

"किन्तु महाराज तिलक अभी भी इससे सहमत नहीं। वे कठिन रोगशय्या पर हैं, उनका मत जानने के लिए कुछ ठहरना हमें अवश्य चाहिये, नहीं तो महाराष्ट्र हमारे साथ न रहेगा।" एक बलिष्ठ महाराष्ट्र व्यक्ति ने कहा, ये केलकर थे।

एक दबंग बंगाली प्रौढ़ पुरुष उठ खड़े हुए। उनके खड़े होने की ध्वजा उस सिंह के समान थी जो शिकार पर आक्रमण किया चाहता है, ये देशबन्धु थे। उन्होंने कहा "हम प्रतीक्षा नहीं कर सकते, हम महाराज तिलक को सहमत कर लेंगे। हमें तत्काल आगे बढ़ना चाहिए, हम रुक नहीं सकते।"

एक वृद्ध महापुरुष उठे। ये आचार्य राय थे। उन्होंने कम्पित स्वर में कहा, "तत्काल असहयोग प्रारम्भ कर देने के मैं मैं पक्ष में हूं, परन्तु महाराष्ट्र तिलक की सहमति लेना भी आवश्यक है।"

"कुछ आवश्यक नहीं है," एक सिन्ध के सुन्दर युवक बोल बापू ने चरखा चलाते २ उन्हें देखा और हंस दिए। वे चुपचाप मनोयोग से सबका मत जान रहे थे।

एक व्यक्ति उठे। उनका शरीर चीते के समान था। उनकी ध्वनि में गर्जन था। ये पंजाब के सिंह लाजपत थे। उन्होंने कहा—"सदैव ही महान मस्तिष्कों में मतभेद रहेगा। हमें जो सत्य है उसे प्रारम्भ कर देना चाहिए। कार्य का सही समय अब है, उसे हम फिर पर नहीं छोड़ सकते। यद्यपि मैं अभी भी इस युद्ध की नीति को ठीक २ नहीं समझ सका हूं, मेरा दिमाग चक्कर खाता है पर मैं महात्मा जी पर विश्वास करता हूं।

मैं तत्काल युद्ध प्रारम्भ करने के पक्ष में हूं ।"

भगवा परिधान किये एक और विशाल मूर्ति उठी । उनकी वाणी मेघ-गर्जन की भांति गम्भीर थी । वे श्रद्धानन्द थे। उन्होंने पंजाब केसरी का समर्थन किया ।

एक गुर्जर वृद्धा धीरे धीरे भीड़ को लांघती हुई महात्मा के निकट चली आ रही थी। ज्योंही उनकी दृष्टि वृद्धा पर पड़ी, वे उठ खड़े हुए । गम्भीर राजनैतिक बातें हठात् रुक गईं । उन्होंने उसके पैर छुये । पास बैठा कर घर का हाल पूछा । वृद्धा इस भांति बोलने लगी, मानो किसी बालक से बात कर रही हो । उसने पंखा उठाया और महात्मा को पंखा झलने लगी । महात्मा ने बाधा देकर कहा—'नहीं काकी, पंखा रहने दो ।'

"क्यों रहने दूँ, क्या तुम मेरे लड़के नहीं हो । तुम्हें पंखा करने से क्या हानि है ।"

"यदि मैं बीमार होऊं तो काकी मुझे पंखा झल सकती है, पर मैं तो तन्दुरुस्त हूं । इस हालत में काकी को पंखा झलने का अधिकार नहीं ।"

सब लोग हँस दिये । वृद्धा भी हंस दी । कुछ क्षण बैठ कर वह चली गई । एक सम्पन्न गुर्जर सद्गृहस्थ ने सपरिवार प्रवेश करके महात्मा को अभिवादन किया ।

महात्मा ने हंस कर उनकी सात वर्षीया बालिका को अँगुली के संकेत से बुलाया । बालिका माता की अनुमति पाकर डरती २ बापू के पास गई । बापू ने कहा—

'तूने तो बड़े गहने पहन रक्खे हैं ? भला इनसे क्या लाभ ?'

बालिका चुप रही ! महात्मा उसकी चूड़ियों से खेलने लगे। वाह कैसी अच्छी चूड़ियां हैं। और ये कानों के बुन्दे ? उन्होंने बालिका के कान के बुन्दे छूकर कहा—'इन्हें तूने किस लिये पहन रक्खा है ?'

"मुझे मां ने पहना दिये हैं।" बालिका ने सोचकर जबाब दिया।

"क्यों ?"

बालिका कुछ न बोली। महात्मा ने कहा—"यदि इन्हें मुझे दे दे तो मैं इनसे बहुत से गरीबों का भला कर सकता हूं। दे सकती है ?"

बालिका ने दूर बैठी माता की ओर देखा और स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया। महात्मा ने बुन्दे और चूड़ियां उतार लीं।

"तुझे बुरा तो नहीं लगा ?"

-'नहीं।"

"पहना दूं ?"

"नहीं।"

"यह तूने गरीबों के लिये दिए !"

"दिये।"

"और भी कुछ तेरे पास है ? हो तो दे दे ?"

बालिका ने जल्दी से कहा—"और मेरे पास कुछ नहीं है ?"

सब लोग हँस दिये। बालिका उस हंसी से घबरा गई।

महात्मा ने बुन्दे और चूड़ियां उसे देकर कहा—"अपनी माता की आज्ञा ले आ। वे कहेंगी तो ले लूंगा। बालिका ने मां के पास से लौट कर दोनों वस्तुएँ महात्मा की गोद में डाल दीं। महात्मा ने कहा—"एक शर्त पर ले लूंगा ?"

"क्या ?"

इनकी जगह और चूड़ियाँ और बुन्दे तो न बनवावेगी।"

बालिका घबराकर चुप रही। यही तो वह सोच रही थी। माता ने भी यही कहा था कि, दे दे और बनवा देंगे।

महात्मा ने कहा—"यदि और बनवाने की इच्छा हो तो इन्हें ही पहिन।"

"मैं नहीं बनवाऊंगी।"

"देखना, बुड्ढे महात्मा को ठगना नहीं।"

"नहीं।"

बालिका माता के पास भाग गई।

एक भीमकाय हाथी के समान मुसलमान सज्जन ने उठकर कहा—

"वाह बापू, आपने तो सौदा बना लिया। और हम घपले ही में पड़े हैं।"

सब लोग खिल-खिलाकर हँस पड़े। ये मौलाना शौक़तअली थे। उन्होंने कहा—"असहयोग करने का हमने इरादा कर लिया है। हमारे पास दूसरा चारा नहीं है। हम आपके साथ हैं। और हमारे साथ सात करोड़ मुसलमान। दुनिया की शक्ति नहीं, जो हमें रोके। हम तिलक महाराज की

प्रतिष्ठा करते हैं परन्तु विचार स्वातन्त्र्य हमारी सबसे बड़ी वस्तु है।"

भारत कोकिला उठीं। उन्होंने कहा—"हम तो असहयोग पहले ही से कर चुके हैं। हमारा जीवन असहयोगमय है, अब तो जनता को उसका पाठ पढ़ाना है। उसमें यदि हम ढील करेंगे तो हम अकेले रह जावेंगे। और जिनके लिये हम सब कुछ कर रहे है, वे असहाय रह जावेंगे। हमें तत्काल अपना काम आरम्भ कर देना चाहिये।"

एक दुबले पतले मुसल्मान भद्रपुरुष ने उठकर अटकते अटकते धीमी किन्तु लचकती दिल्ली की भाषा में कहा—'हम तो बापू के साथ हैं, हमने अपने विचार और हाथ पैर भी इन्हें दे दिये हैं। हम सिपाही की भाँति तैयार हैं।' ये हकीम अजमलखां मसीहुलमुल्क थे।

वह बालिका फिर बापू के सामने आ खड़ी हुई। उसने बापू से कहा—

"मैंने तुमको ठग लिया।"

"नहीं, नहीं, तुम ऐसा नहीं कर सकतीं।"

"मैंने तुम्हें ठग लिया।" वह ज़ोर से हँस पड़ी।

"नहीं बिट्टो मैं बुड्ढा महात्मा हूँ। मुझे तुमने नहीं ठगा। तुम बहुत अच्छी हो!"

"मैंने तुम्हें ठग लिया।" वह इस बार हँस न सकी।

बापू उसकी ओर मुस्करा कर कर देखने लगे। उसने जेब से ढेर के ढेर सोने-चाँदी और ताँबे के सिक्के निकाल कर कहा—"यह देखो अभी इतना माल मेरे पास और है।" वह

अपराधी की भांति बापू की तरफ देखने लगी।

"तब तो सचमुच तुमने ठग लिया बिट्टो!" बापू ने मर्म-भेदनी दृष्टि उस पर फैंककर कहा। "लो" कहकर बालिका ने वे सिक्के महात्मा के आगे फैंक दिये और वह दौड़ कर अपनी माता की गोद में मुँह छिपा कर सिसककर रोने लगी। बापू कुछ बोले नहीं। वे मानो ध्यानस्थ से हो रहे थे। वे निश्चल बैठे रहे। सभी व्यक्ति चित्र लिखित से बैठे थे।

मीरा ने एक वृद्ध पुरुष के साथ प्रवेश किया। वृद्ध के हाथ में वीणा थी, मीरा ने कहा—बापू! ये बाबा काशी से आपको बीणा सुनाने आये हैं।' महात्मा ने चौंक कर उधर देखा। संकेत से उन्हें निकट बुलाया। फिर कुछ स्थिर स्वर में कहा—"मीरा, वहां से जरा उस बिट्टो को तो गोद में उठा लाओ" मीरा ने बालिका को गोद में उठाकर महात्मा की गोद में ला बैठाया।

महात्मा ने वृद्ध गायक से कहा—'गाओ बाबा।'

वृद्ध गायक ने वीणा के तार छेड़े, अपने कम्पित कण्ठ को मिलाया और क्षण भर में वह प्रकाण्ड राजनीतिक महाजनों की मण्डली उस मधुर संगीत के वातावरण में डूब गई।

गीत की समाप्ति पर बापू ने बालिका से कहा—"क्यों बिट्टो, अब तो मुझे कभी नहीं ठगेगी?"

"नहीं।" बालिका ने करुण दृष्टि से बापू को देखा। बापू ने हल्की सी चपत उसके गाल पर जमाई। बालिका का पाश ढीला हुआ। महात्मा स्थिर होकर बैठे। उनके मुख पर नवीन तेज आया। आंखें किसी खूढ़ जगत में विचरने लगीं। उन्होंने धीरे धीरे किन्तु स्पष्ट स्वर में कहा—

"आप सबका मत मैंने जाना। अब मेरा भी सुनिये। मैंने खूब अच्छी तरह विचार कर निर्णय कर लिया हैं कि यदि एक भी व्यक्ति मेरे साथ न होगा तो मैं अकेले ही इस युद्ध को छेड़ दूंगा, भले ही प्राण जायें। मैं आपसे भी प्रार्थना करता हूं कि केवल वे ही सज्जन इसके पक्ष में रहें जिन्हें किसी की सम्मति की आवश्यकता नहीं और जिनकी अन्तरात्मा की आवाज़ इसके अनुकूल हो।"

इस धीर किन्तु स्पष्ट भाषण के बाद सन्नाटा छा गया। इसी बीच में एक युवक ने आकर सूचना दी कि अभी फ़ोन पर बम्बई से खबर आई है कि तिलक भगवान् का स्वर्गवास हो गया।

यह समाचार पाते ही प्रत्येक व्यक्ति सन्न रह गया। कुछ क्षण मौन रह कर महात्मा ने घड़ी की ओर देख कर कहा— "हमें अभी चलना चाहिये।"

वे इतना कह कर उठ खड़े हुए। सभी उठ खड़े हुये। सुशील कठपुतली की भांति चुपचाप इस महापुरुष का यह कौतुक देख रहे थे। उसके सामने समस्त भारत के प्राण केन्द्रीभूत थे। उन के सामने भारत के भाग्य निपटारा हो रहा था। उनके सन्मुख प्रबल प्रतापी ग्रेट ब्रिटेन की सत्ता के विरुद्ध युद्ध की गम्भीर तय्यारी की जा रही थी। परन्तु जो महापुरुष इन सब प्रगतियों का केन्द्र था, वह अब भी बालकों के समान हास्य और विनोद में मग्न था। वे उस महाप्राण संत पुरुष के व्यक्तित्व पर सोच ही रहे थे कि महात्मा ने उनके कन्धे पर हाथ धर कर कहा— "तुम ठहरो, मीराबेन तुम्हारी व्यवस्था कर देंगी। मैं शीघ्र ही बम्बइ से लौटूंगा तब और बातें होंगी।"

वैशाली की

नगरवधू

आचार्य श्री का

महान, अद्भुत और नवीन

उपन्यास

मित्रों,

वैशाली की नगर वधू, आपको भेंट करते हम गर्वोन्नत हैं। इस महत्वपूर्ण असाधारण उपन्यास के साथ हम हिन्दी साहित्य के कथा क्षेत्र को पांचवीं सीढ़ी पर चढ़ते हैं।

सर्व श्री गोपालराम गहमरी, किशोरीलाल, गोस्वामी देवकीनन्दन खत्री और प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा क्षेत्र में एक एक सीढ़ी का निर्माण किया। जिन पर अनेक चरण पड़े। अब यह पाँचवीं सीढ़ी आचार्य चतुरसेन स्थापित कर रहे हैं।

इस ग्रन्थ को साधारण अर्थों में आप 'उपन्यास' कह सकते हैं, परन्तु वह यथार्थ में मसीह से पूर्व पांचवीं शताब्दी के बृहत्तर भारत की सभ्यता, संस्कृति, विभूति, समृद्धि और लोक जीवन का ऐसा रोचक आकर्षक और अद्भुत चल चित्र है कि जिसकी कल्पना बिना ग्रन्थ को पढ़े नहीं की जा सकती। जो तथ्य और सिद्धान्त इस उपन्यास में वर्णित हैं, उन्हें पढ़ कर भारतीय समाज में कितना क्षोभ होगा, उसकी हम अभी से कल्पना कर रहे हैं। यह हम अधिकारपूर्वक कह सकते हैं कि इस उपन्यास को पढ़ कर देश के लाखों निष्पक्ष विचारकों की प्राचीन भारत के सम्बन्ध में विचार धारा ही बदल जायगी। इतिहास के पण्डित अपने कान खुजाते हुये फिर से इतिहास के पृष्ठों पर संदेह भरी दृष्टि डालेंगे। उन्हें अब दूसरे ही आधारों पर भारतीय प्राचीन इतिहास का निर्माण करना होगा।

ग्रन्थ का निश्चय ही ज़बर्दस्त विरोध होगा। रूढ़िवादी, गतानुगतिक जन उबल खड़े होंगे। परन्तु ग्रन्थ के लेखक ऐसे असमर्थ नहीं हैं। और हम भी इस साहित्य विप्लव से टक्कर लेने के लिये कटिबद्ध हैं।

सन् ४० ही में आचार्य श्री ने यह असाधारण उपन्यास अपने ४ वर्ष के सतत अध्ययन और अध्यवसाय से सम्पूर्ण कर लिया था।

उपन्यास को पूरा करने के लिये आचार्य को वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, पुराण, स्मृतिसूत्र, बौद्धजातक एवं जैन आगमों आदि २०० से अधिक ग्रन्थों का बारम्बार अध्ययन करना पड़ा था। अनेक विद्वानों से विवादास्पद विषयों पर विचार विनिमय करना पड़ा था।

ग्रन्थ की समाप्ति पर आचार्य ने एक छोटा सा साहित्य समारोह करके चुने हुये साहित्य मित्रों को ग्रन्थ से परिचित कराया था। तभी से अनेक प्रकाशक, फिल्म निर्माता और अनुवादक मित्रों ने इसे प्राप्त करने का उद्योग किया। परन्तु आचार्य ने पाण्डुलिपि का किसी को दर्शन भी नहीं करने दिया। वे इस महत्वपूर्ण कृति को प्रकाशित करने के लिये अधिक उपयुक्त और अनुकूल वातावरण चाहते थे। अन्त में कुछ धूर्तों ने षड्यन्त्र रच कर इस की पाण्डुलिपि को चुरा लिया। अपनी इस अप्रतिम कृति की पाण्डुलिपि खोकर आचार्य को असह्य मनोव्यथा हुई और तीन वर्ष तक वे लेखनी त्याग कर शोक सन्तप्त पड़े रहे। मित्रोंसे मिलना जुलना भी बंद कर दिया। इसके बाद अन्तःप्रेरणा पाकर उन्होंने फिर लेखनी उठाई, और असम साहस और अप्रतिम धैर्य से रात दिन चार वर्ष परिश्रम करके दुबारा यह उपन्यास केवल स्मृति के आधार

पर लिख कर एक चमत्कार का प्रदर्शन किया। इस बार लेख- को तीन वर्ष के तपने और भी तेजस्वी कर दिया। जब हमने अद्भुत उपन्यास रत्न को प्रकाशित करा कर आपकी भेंट करने संकल्प किया तो हम हर तरह विपरीत परिस्थितियों में फंसे थे परन्तु ईश्वर की कृपा कहिये या आप मित्रों की शुभ कामना का फल अथवा पूर्वजों के सुकृत का पुण्य प्रताप, हमने सब विघ्न-बाधाओं को पार कर ग्रन्थ को तैयार कर लिया। अब वह आपकी सेवा में उपस्थित है।

परन्तु उपर्युक्त कारणों से ग्रन्थ परिमित संख्या में छपा है। तथा कुछ प्रतियाँ प्रथम ही बुक हो चुकी हैं। अतः यह सम्भव नहीं है कि यह साधारण पुस्तक विक्रेताओं को भेजी जाय। इसलिये अपने और हमारे सुभीते के लिये आप यह व्यवस्था कीजिये कि एक प्रति अपने लिये और कम से कम ४ प्रतियाँ अपने मित्रों के लिये, कुल पाँच प्रतियाँ अपने नाम रिजर्व करने की आज्ञा तुरन्त भेज दें। आपके नाम की बारी आते ही आपकी और आपके मित्रों की प्रतियाँ रेल पार्सल द्वारा भेज दी जावेंगी। तथा इसकी सूचना आपको यथा समय दे दी जायगी।

पुस्तक २०×३० =१६ पेजी साइज में १००० पृष्ठों समाप्त हुई है। पक्की मजबूत बाइंडिंग तथा ऊपर पांच रंगों का प्रोटेकटिंग कवर। कागज तथा प्रेस की वर्तमान कठिनाइयों तथा महगाई को सह कर भी इसका मूल्य १२) प्रति रखा है।

सादर—

ज्ञानधाम, दिल्ली शाहदरा।
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

विनीत—
चन्द्रसेन

Durga Sah Municipal Library, Naini Tal,
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी नैनीताल